* हरि ओ३म् तत्सत् *

सहज-मार्ग

SAHAJ-MARGA

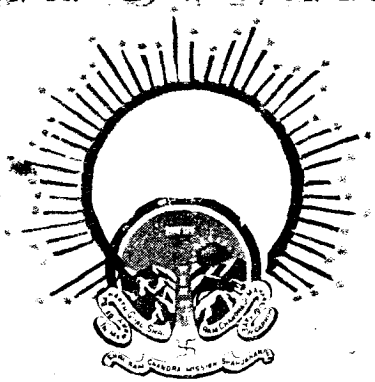

वर्ष १ अंक १

श्री रामचन्द्र मिशन (शाहजहाँपुर), यू० पी०
SHRI RAMCHANDRA MISSION
SHAHJAHANPUR (U. P.)

सम्पादक मंडल

काशीराम अग्रवाला
किशनलाल अग्रवाला
गजानन्द अग्रवाला

वार्षिक मूल्य ३)] [एक अंक का

प्रकाशक—श्री रामचन्द्र मिशन

'सहज-मार्ग' के नियम

(१) आध्यात्मिकता एवं गुप्त अनुभवी रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना 'सहज-मार्ग' का मुख्योद्देश्य होगा।

(२) 'सहज-मार्ग' में आत्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जावेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई सज्जन कष्ट न करें।

(३) पत्र-व्यवहार के लिए 'सहज-मार्ग' कार्यालय, तिनसुकिया (आसाम) याद रखें।

(४) लेखों के घटाने-बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को रहेगा। परन्तु लेखों में प्रकाशित मत के लिए सम्पादक उत्तरदाता न होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक तरफ ही साफ-साफ लिखे हों।

(५) ग्राहकों को पता साफ-साफ लिखना चाहिए, और साथ ही ग्राहक नम्बर भी लिख देना चाहिए। उत्तर के लिए टिकट भेजना उचित है।

(६) 'सहज-मार्ग' का वार्षिक मुल्य ३) रु० है। एक वर्ष से कम ग्राहक नहीं बनाये जावेंगे।

विषय-सूची

क्रम-संख्या	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
(१)	प्रार्थना		१
(२)	सम्पादकीय		२
(३)	नया जीवन	श्री किशनलाल अग्रवाला	३
(४)	जीवन का ध्येय	श्री रामदास चतुर्वेदी	४
(५)	प्रेम की विशेषता	सुश्री कुमारी कस्तूरी	५
(६)	गीत	सुश्री कुमारी केशर	६
(७)	प्रार्थना का ध्येय	श्री ईश्वरसहाय	११
(८)	एक सन्त की वाणी		१३
(९)	आध्यात्मिकता और उसका रूप	श्री काशीराम अग्रवाल	१५
(१०)	जीवन	सुश्री कुमारी कस्तूरी	२०
(११)	शुभ-सन्देश	श्री रामचन्द्रजी महाराज	२१
(१२)	मेरा जीवन	श्री गजानन्द	२३
(१३)	प्राण-आहुति	श्री ईश्वरसहाय	२४
(१४)	सहज-मार्ग के दस नियम		२६
(15)	Shri Ramchandra Mission	By Shri Ramdas Chaturvedi	27
(16)	The Saviour	By Shri Ishwar Sahai	36
(१७)	श्री रामचन्द्र मिशन के सदाचार-संबंधी नियम	श्री रामचन्द्रजी महाराज	

* ओं३म् तत्सत् *

सहज-मार्ग

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधतः ।

अर्थ—उठो ! जागो ! जब तक ध्येय प्राप्त न हो जाय, मत रुको !!

वर्ष १ संख्या १	अक्टूबर, १९५६ OCTOBER, 1956	वार्षिक मूल्य ३) एक अंक

प्रार्थना

हे नाथ, तू ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है।
हमारी इच्छायें उन्नति में बाधक हैं।
तू ही हमारा एक मात्र स्वामी और इष्ट है।
बिना तेरी सहायता तेरी प्राप्ति असम्भव है।

(श्री रामचन्द्र मिशन, शाहजहाँपुर की दैनिक प्रार्थना)

सम्पादकीय विचार

यह पत्रिका श्री रामचन्द्र मिशन, तिनसुकिया (ब्रांच) की तरफ से छपी है। इसमें केवल आध्यात्मिक तन्तुओं का सहारा लेकर, एक लेखनी के रूप में, आत्म-उन्नति ही एकमात्र लक्ष्य मान कर तथा समस्त जनों को इसकी ओर अग्रसर बनाने के निमित्त भर-सक प्रयत्न किया गया है। इसके अन्दर न कोई राजनैतिक द्वन्द्वता है और न कोई सामाजिक भर्त्सना है। इसमें पूर्ण आत्म-ज्ञान का भव्य दिग्दर्शन है।

लिखना न होगा कि आज हमारा भारत आध्यात्मिक क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है। वह भारत, जो पहले आध्यात्मिकता के नाते सर्वप्रिय, अलौकिक तथा सर्वोपरि था, वह आज मौन क्यों ? आज इसकी आध्यात्मिक जड़ों में शिथिलता आ गई है, जिसके लिए आत्म-सुधार एवं नव-जागृति की आवश्यकता है।

हमारे आध्यात्मिक प्रगति में रोड़ा अटकाने वाले प्रमुख कारण ये हैं—(१) अनभिज्ञता, (२) अन्ध-विश्वास। इन्होंने हमको जकड़ रखा है, जिससे हमारी बुद्धि या विवेक-शक्ति ठोस पदार्थों तक ही निर्धारित है। हमारे अन्दर चेतना का अभाव है, जिससे हमारा उत्थान नहीं होने पाता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह पहला प्रकाशन आपकी सेवा में है। आशा है कि आप इसकी त्रुटियों के बारे में हमको सूचित करते रहेंगे, ताकि उनका अगले अंक में बहिष्कार किया जाय।

—काशीराम अग्रवाल,
सम्पादक

नया जीवन

बुझता दीपक जल उठा, बुझता दीपक जल उठा ;
आशा फिरसे जगमगा उठी, नवजीवन संचार हुआ ।
बुरा साथी बिछुड़ चुका
सु - साथी आय गया
बुरा जीवन ढल चुका
सु - जीवन रहय गया ।

रात का छाया तम, सुबह का सूरज ले भाग उठा ;
रात का मुरझाया सुमन, किरन पा कर खिल उठा ;
बुझता दीपक जल उठा, बुझता दीपक जल उठा ।
रोनेवाले के आँसू पोंछे 'उसने'
प्रेम-जल से नहलाय दिया
दे दिया एक सन्देश 'उसने'
'सहज-मार्ग' दिखलाय दिया ।

ओ दुनियावालो, जाग जरा, इक जीवन-संग्राम मच उठा
सोने वाले रह जायेंगे, पूज्य 'बाबू जी' बोल उठे ;
बुझता दीपक जल उठा, बुझता दीपक जल उठा ।
भूलने वाला भूल चुका था 'उसको'
फिर से स्मरण कराय दिया
प्रेम-भक्ति का पाठ पढ़ा कर हमको
एक अमूल्य दृश्य दिखलाय दिया ।

अब न गँवायें जीवन ये, सुन्दर घड़ी आय गई ।
बस अब नहिं रुक सकेंगे, सुन्दर मुर्ती मोह गई ।
बन्द कमल फिर खिल पड़ा, बुझता दीपक जल उठा
देख जरा उनकी ओर प्यारे,
अनुपम रूप लुभा जायेगा,
दो दिन का जीवन है प्यारे
गया वक्त फिर नहीं आयेगा ।

रहे सदा बस 'उन्हीं' के, 'उन्हीं' का नित स्मरण रहे ।
कण-कण से आवाज उठे, (बाबूजी) नया दर्द अमर रहे ।
बुझती अग्नि धधक उठी, आशा फिर से जगमगा उठी ।
बुझता दीपक जल उठा, बुझता दीपक जल उठा ।
शान्ति का मजा चखने वालो,
अशान्ति का भी स्वाद ले लो
मीठे फल हैं लगे हुए
लूट करके भी देख लो ।

कौन-सा खट्टा कौन-सा मीठा
परख पड़ेगी अपने - आप
कौन-सा सीधा कौन-सा टेढ़ा
जान पड़ेगी अपने - आप ।

ऊपर-नीचे देख लिया, देख लिया सब संसार ।
मेरे 'बाबू जी' की महिमा, अवर्णन अपरम्पार ।
बुझता दीपक जल उठा, बुझता दीपक जल उठा ।

—किशनलाल अग्रवाल, तिनसुकिया

जीवन का ध्येय

श्री रामदास चतुर्वेदी, बी० ए०, एल-एल० बी०

पुरातन काल से मनुष्य-जाति के समक्ष यह प्रश्न सदा उपस्थित रहा है कि 'मनुष्य के जीवनका ध्येय क्या होना चाहिए'।

सुख सब चाहते हैं, स्वतन्त्रता सब चाहते हैं; दुःख कोई नहीं चाहता और परतन्त्रता (दासता) कोई नहीं चाहता। सुख दो प्रकार के होते हैं—लौकिक और पारलौकिक। स्वतन्त्रता भी दो प्रकार की होती है—झूठी और सच्ची। झूठी स्वतन्त्रता पुराने काल के महाराजाओं को और बादशाहों को प्राप्त रहती थी। वे जो चाहते थे, अपने राज्य में वह कर डालते थे, परन्तु दुःखों, कष्टों, क्लेशों तथा फिक्रों से वे छुटकारा नहीं पाते थे, उनको भाँति-भाँति की आधि-व्याधियों में फँसना पड़ता था।

सांसारिक या लौकिक सुख, मान, पदवी, धन और स्वास्थ्य-सम्बन्धी वस्तु है। इसमें लौकिक इच्छाओं की पूर्ति तथा सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति में सुख माना जाता है, परन्तु यह सुख टिकाऊ नहीं होता। थोड़ी देर तक अनुभव में आता है, पुनः नवीन इच्छाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और उनकी पूर्ति के लिए दौड़-धूप आरम्भ हो जाती है।

कुछ सज्जनवृन्द विद्या-प्राप्ति को जीवन का ध्येय मानते हैं। वे जन्म-भर पढ़ा ही करते हैं। उनकी पढ़ाई का कभी अन्त ही नहीं होता। ग्रन्थावलोकन उनका व्यसन हो जाता है।

इसी प्रकार कुछ सज्जन कला-कौशल्य को अपना ध्येय समझते हैं, तरह-तरह की कलाओं का रसास्वादन जीवन-भर किया करते हैं। कोई शिल्पकार, कोई तसवीरें बनाने वाले, कोई बाग-बगीचे के कार्य में दक्ष हो जाते हैं, कोई-कोई गायन-वादन में मस्ती का अनुभव करते हैं इत्यादि-इत्यादि।

कुछ सज्जन अपने प्रान्त की सेवा करना और कुछ देश की सेवा करना अपने जीवन का ध्येय बना लेते हैं और कुछ जाति-सेवा ही को सब कुछ समझते हैं।

कुछ सज्जन आरोग्य-मन्दिर खोलकर बिना मूल्य रोगियोंकी चिकित्सा करते हैं और कुछ सेवा-समितियाँ खोल कर समाज की सेवाएँ किया करते हैं।

उपरोक्त ध्येयों में कुछ का सम्बन्ध पुण्य कर्मों से है और कुछ ऐसे हैं कि उनके अनुकूल बर्तने से हमारा ध्यान धीरे-धीरे ईश्वर की ओर खिंचने लगता है, परन्तु मुख्यतः हैं यह सब लोक से ही सम्बन्ध रखने वाले। इन पर चलने वाले संसार में कष्टादि घटाते हैं, देशों को धन-धान्य सम्पन्न बनाते हैं इत्यादि।

मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार हमारा ध्येय ऐसा होना चाहिए, जो यह लोक तथा परलोक दोनों का बना देने वाला हो, संसार में दुःखों और पापों का घटाने वाला हो, पुण्यों का बढ़ाने वाला हो, जगत् को समृद्धिशाली तथा धर्म पर चलने वाला बनाने वाला हो। धर्म शब्द का अर्थ यहाँ मजहब नहीं है, 'धर्म' शब्द की व्याख्या निम्न प्रकार है :—

'धर्म वह है, जो मनुष्यों का यह लोक तथा परलोक दोनों बना दें।'

शास्त्र में यह भी बताया गया है कि 'जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है,' 'धर्म ही जगत् की रक्षा करता है'। ऐसे धर्म को ईश्वर का रूप माना गया है।

स्पष्ट है कि ऐसा ध्येय आध्यात्मिक ही हो सकता है, लौकिक नहीं हो सकता। आध्यात्मिक शब्द का अर्थ है 'ईश्वर-सम्बन्धी'। आध्यात्मिक सुख या शान्ति या आनन्द एक शाश्वत वस्तु होती है। वह आ कर फिर जाती कभी नहीं। वह जिसको प्राप्त हो जाती

है, बस, सदैव के लिए ही प्राप्त होती है। यह अवश्य होता है कि आनन्द की दशा उन्नति करने पर सूक्ष्म होती चली जाती है। जिस प्रकार कुछ पुष्पों की सुगन्धि तेज होती है, इसी प्रकार आरम्भ में आनन्द का अनुभव तेज होता है और जिस प्रकार कुछ पुष्पों की सुगन्धि मोठी-सी और भीनी-सी अर्थात् बारीक-सी होती है, उसी प्रकार यह आनन्द एक भीनी चीज बनता चला जाता है, परन्तु रहता सदैव है। इसके प्राप्त होनेपर सांसारिक दुःख व सुख म्लान हो जाते हैं अर्थात् बहुत हल्के मालूम होने लगते हैं। इनका कोई संस्कार नहीं बन पाता। यह तो तब बिना बुलाये और कमजोर मेहमानों की भाँति आये-गये बने बने रहते हैं, इन्हें कोई पूछता ही नहीं।

जो मनुष्य सांसारिक पदार्थों में सुख ढूँढ़ते हैं, उन्हें वास्तविक सुख कैसे मिल सकता है; क्योंकि पदार्थों में सुख होता ही नहीं। सुख-दुःख तो अपने अन्दर होता है। कुछ पदार्थों के इन्द्रियों से स्पर्श होने पर चित्त में एकाग्रता आ जाती है। उस एकाग्रता के कारण मनुष्य क्षणिक सुख का अनुभव करता है। सुख मन की एकाग्रता में है, पदार्थ में नहीं है। आध्यात्मिकता में मन की एकाग्रता परमात्मा में हो जाती है, जो सुख की खानि स्वयं है। इस कारण आध्यात्मिकता के सुख का क्या ठिकाना है, कौन उसका बखान कर सकता है; वह तो भाई अनुभव की ही चीज है।

आध्यात्मिकता में सफल या सिद्ध पुरुष का शरीर गुरु या ईश्वर का दास होता है; परन्तु उसकी आत्मा आजाद होती है अर्थात् बन्धन में नहीं होती है अर्थात् वह मुक्त होती है। ऐसी आत्मा को 'व्यक्तात्मा' अथवा 'मुक्तात्मा' कहते हैं। ऐसे व्यक्ति में कुछ मस्ती, कुछ लापरवाही तथा ईश्वरीय सद्गुण होते हैं। वह खूब परोपकार करता है। उसकी दृष्टि सर्वत्व में रहती है, व्यक्तित्व में नहीं। उसमें संकुचितपना नहीं होता। वह विशाल-हृदय होता है। उसे अल्प से क्या काम। उसमें ईश्वरीय शक्ति होती है। वह उससे सफलता पूर्वक काम लेता है। वह वही करता है, जो ईश्वर उससे कराना चाहता है। वह लोकों का, देशों का, प्रान्तों का तथा व्यक्तियों का परम उपकार किया करता है, चाहे कोई उसकी सेवाओं को जान पावे अथवा न जान पावे, वह उपकार के बदले में प्रति-उपकार नहीं चाहता।

महात्मा कबीरदास जी ने क्या सुन्दर कहा है, उनके कथनको सुनकर अपने जीवनका ध्येय निश्चय करिये—

'कबिरा कूता राम का, मोतिया मेरा नाँव;
गले करे राम की जेवरी, जित खेंचें तित जाँव।
तू - तू करैं तो बाहुणों, दुर - दुर करैं तो जाँव;
ज्यों हरि राखैं त्यों रहूँ, जो देवैं सो खाँव।'

शब्दार्थ—'कबिरा'—महात्माजी ने तुच्छता प्रगट करने के लिये अपना नाम इस तरह बिगाड़ा था; 'कूता'-कुत्ता; 'मोतिया'—लोग बहुधा कुत्तों का यह नाम रख लेते हैं; 'जेवरी'—सुतरी, रस्सी; 'बाहुणों'—पास जाना या निकट जाता हूँ; 'हरि'—पाप हरने वाले परमात्मा; 'राम'—जो सर्वत्र रमा हो।

हमारे मिशन में साधकों के लिए दस सुनहरी तथा महा उपयोगी नियम रखे गये हैं। इनमें से तीसरा नियम हमको हमारा ध्येय 'ईश्वर में लय अवस्था प्राप्त करना' बताता है। इससे अच्छा ध्येय अन्य कोई हो ही नहीं सकता। जब तक भारतवर्ष का यह ध्येय रहा तब तक यह देश जगत् का गुरु बना रहा और बहुत धन-धान्य सम्पन्न रहा, उसी ध्येय के पुनः पुनः स्थापित करने के लिये भगवान् रामचन्द्र व कृष्णचन्द्र जगत में अवतरित हुए थे।

जिस दिन संसार इस ध्येय को अपना लेगा उस दिन से निश्चय ही जगत् में सुख-शान्ति की वृद्धि आरम्भ हो जायगी।

प्रेम की विशेषता

कहावत है कि 'जब तक बच्चा रोता नहीं, माँ दूध नहीं देती', इसी लिए तो प्रेम को उत्पत्ति हुई है। प्रेम की रीति निराली है, परन्तु सत्य है। प्रेम तो हमको करना होगा और अवश्य करना होगा, यह तो अनिवार्य है। चाहे मानवत्व से करें, चाहे दानवत्व से करें; चाहे ईश्वर से करें। प्रेम के बिना (अर्थात् बिना लगाव के) तो हम एक क्षण भी रह ही नहीं सकते हैं। अन्तर केवल इतना-सा पड़ जाता है कि मानवत्व से प्रेम हमें एक अच्छा समाज देता है और दानवत्व से प्रेम हमें अधोमुखी करता है। ईश्वरत्व से प्रेम हमें ईश्वर की प्राप्ति करवाता है और ईश्वर-प्राप्ति के अर्थ हैं सर्वस्व (सब कुछ) की प्राप्ति। जैसा कि कबीर जी ने लिखा है कि :—

'एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय'।

भाई इसी पावन-प्रेम की विशेषता (अर्थात् ईश्वरीय-प्रेम) की एक झलक हमें हिन्दी कवि बरकतउल्लाह 'प्रेमी' के भाव-पूर्ण दोहे में मिलती है :—

'पार कहे तें वार है, वार कहे नहिं पार,
या मग वार न पार है, तन-मन डारौ वार।'

किन्तु भाई यह रीति भी अनोखी है। तन-मन आखिर हम क्यों वार दें,—किसपर वार दें, और क्यों वार दें? इस विषय में भाई मैं तो यही कहूँगी कि वार देने वाले चतुर बहुत होते हैं। वे सोचते हैं और यह सत्य भी है कि वस्तु की चिन्ता वही भली प्रकार कर सकता है, जिसने इसको बनाया है। मिट्टी के बर्त्तनों की चिन्ता कुम्हार को ही होगी, क्योंकि उसने उन्हें निर्मित किया है तथा अपनी वस्तुको अच्छी से अच्छी बनाने का प्रयत्न भी वही करेगा। हम लोग तो केवल उसका उपभोग-मात्र ही करेंगे तथा अपने उपयोग की वस्तु होने के नाते हमें उसकी थोड़ी-सी परवाह व चिन्ता हो जायेगी कि यह नष्ट न होने पाये। इसी प्रकार जितनी चिन्ता जननी को अपने बालक के लिए होती है, उतनी बालक को नहीं। इसी प्रकार जो हमारा निर्माता, हमारी जननी 'ईश्वर' है, उसे जितनी चिन्ता अपने बालकों की है उतनी हमें अपनी नहीं है। 'वह' चाहता है कि 'उसकी' वस्तु उत्तम-से-उत्तम बने, और ऐसी कि कभी टूटे नहीं, फूटे नहीं और न उसका रंग ही बदरंग हो। ऐसी ही उसे अपने बालकों की चिन्ता है कि उनके मन की भी दशा वैसी होती रहे, जिससे वे कभी दुःखी और कभी सुखी, कभी जन्म या कभी मरण के भँवर में न फँस सकें। इसी लिए वह अपनों के लिए सरल-से-सरल युक्ति एवं सहज-से-सहज मार्ग की स्थापना करता है और मनुष्यों से केवल यही कहता है कि 'आध्यात्मिकता कोई कठिन वस्तु नहीं है। बस, जरा-सा हम इन्सान बन जायें। ऐसे कि हमारी इन्सानियत में एक भी धब्बा न रह जाये, अर्थात् थोड़ी सी त्रुटियाँ जो कुछ हममें आ गई हैं, वे दूर हो जाएँ तो फिर जिन बातों की हमें आवश्यकता है, वे स्वतः ही हम में आ जाएँगीं।' फिर क्या है? आगे आध्यात्मिक चमत्कार-ही-चमत्कार रह जाते हैं। बस, इसी के लिए हमें आवश्यकता पड़ती है 'तन मन वार देने की', तथा यही प्रेम की विशेषता है और इसीके द्वारा हम ब्रह्म-विद्या सीखने के अधिकारी भी बन पाते हैं। जैसा कि मुण्डकोपनिषद में लिखा है कि :—

'पर प्राप्ति साधनं सर्वसाधन साध्य-विषय वैराग्य पूर्वक गुरुप्रसादलभ्यां ब्रह्म-विद्या माह'। अर्थात् साधन, साध्य-रूप सब प्रकार के विषयों से वैराग्य-पूर्वक गुरु-

✪ लेखिका :—कुमारी कस्तूरी 'सन्ध्या' ✪

कृपासे प्राप्त ब्रह्म-विद्या को ही पार-ब्रह्म की प्राप्ति का साधन बतलाया है। किन्तु भाई जहाँ तक मेरा अनुभव साथ देता है, मैं तो यही कहूँगी कि गुरु वह गुर (अर्थात् छोटा-सा मन्त्र) है कि जिस एक गुर के सिद्ध लेने पर मानव-लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अन्य गुर की आवश्यकता नहीं रह जाती है। श्री रामचन्द्र मिशन के प्रधानाचार्य 'श्री रामचन्द्रजी महाराज' (अर्थात् हमारे श्री बाबू जी) ने एक बार कहा था कि 'बिटिया, गुरु वह है, जो अँधरे में उजियाला कर दे। मैंने तो भाई प्रत्यक्ष देखा है कि वह कैसे अपने बालक को सम्हालता है। मुझे स्मरण है कि मैंने एक बार श्री बाबू जी को लिखा था कि कौन कहता है कि ईश्वर-मार्ग में बढ़ने वाले प्रेमी पर विपत्तियाँ आती हैं? मैं तो यह देख रही हूँ कि विपत्तियों की लुका-छिपी में मेरे 'श्री बाबू जी' बिटिया (मुझ) को शाह बना देते हैं। वह तो सदा मस्त फकीरों की रहन रहता है, गरीब मानव की नहीं।

भाई मैंने तो अपनी इस गंगा के किनारे (Transmission Power) सदा मन्द शीतलता के ही कण मिलते-मिलते, गंगा की (नदी की) आवश्यकता ही भुला दी। कहते हैं कि एक बार प्रेम में मदमाते सन्त-कवि बुल्लेशाह जी से उनके गुरु शाह इनायत ने पूछा—'ओह, तू बुल्ले ऐं'?—अरे, तुम बुल्ले शाह हो? बुल्ले शाह ने कहा—'नहीं, मैं भुल्ला-साँ'—नहीं, मैं भूला हुआ था। वे तो मस्त-मौला बने फिरा करते।

मैं तो कहती हूँ कि प्रेम क्या किसी के कहने से अथवा किसी को दिखाने के लिए किया जाता है? नहीं! वह तो स्वतः आनन्द के लिए स्वतः ही हृदय में उत्पन्न होता है। वह तो साधक को दीवाना और दीवाने को मृत्यु के घाट उतार देने के लिये उत्पन्न होता है। किंचित दृष्टि तो फेरें कि भक्तिमती मीराबाई की सुमधुर रागिनी हृदय में कुरेदन मचाती हुई क्या गा रही है :—

'जहँ बैठारे तित ही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ;
'मीरा' के प्रभु गिरधर-नागर, बार-बार बलि जाऊँ।

भाई कौन कहता है कि प्रेम में व्यथा है? हाँ, हो सकती है कदाचित् उसे, जो इस संसार को ही सर्वस्व और अपना मान रहा है। इसके निर्माता तक जिसकी दृष्टि ही नहीं पहुँचती, किन्तु मैं तो आज ऐसा कदापि न कहूँगी कि 'खुले नैन पहिचानौं हँसि-हँसि, सुन्दर रूप निहारौं'। यह अवश्य है कि प्रेमी मर-मर कर जीता है, किन्तु उस मरण में उसे जीवन का आनन्द आता है। यद्यपि उसे तो यह तक सुधि नहीं रहती कि उसमें प्रेम है या नहीं? वह प्रेम क्यों करता है, उसे कुछ पता ही नहीं, क्योंकि उसने तो बेपते होने के लिए ही पते का (प्रेम का) आश्रय लिया था। यद्यपि उसमें चेतना होती है, वह बेहोश नहीं रहता; किन्तु उसमें चेतना होती है अपने ईश्वरीय संसार की, पारलौकिक आनन्द की। उसकी तो बात ही उल्टी होती है, वह तो कहता है—

"जा मरिबे तैं जग डरै, मोकों अति आनन्द,
कब मरिहौं, कब पाइहौं, पूरन ब्रह्मानन्द।"

कहते हैं कि एक प्रेमी से किसी ने पूछा—'तुम्हारा प्रियतम तो काला है?' वह बोला—'बिलकुल झूठ।' उसने कहा—'नहीं, सचमुच काला है',तो उसने कहा—'भाई, तुमने उसे किस औजार से देखा है?' तो उत्तर दिया—'जिससे कुल संसार देखता है।' प्रेमी ने कहा—'अच्छा, तुमने उसे अपने नेत्रों से देखा है, तभी तुमको उसके वास्तविक सौन्दर्य का पता न लग सका।' पुनः उसने प्रश्न किया—'क्या उसको देखने का कोई और औजार है?' प्रेमी बोला—'हाँ, वह है मेरी आँखें।' बस, इतना सुनते ही वह निहाल हो गया।

भाई, प्रेमी तो निर्भीक होता है। उसके पीछे जो उसके 'मालिक' की शक्ति सम्बन्धित रहती है, उससे अबोध होते हुए भी उसे उसका जोर रहता है। उसकी

'हाय' में चमत्कार होता है और उसकी 'कराह' में आध्यात्मिकता लोटती है। 'प्रेम' की परिभाषा कितनी सरल है। एक सूफी शायर ने कितना सुन्दर कहा है—

"असाँ देखी क़ाती अति घनी, जो एक से दो करे ;
बहलोल क़ाती प्रेम दी, जो दो से एक करे।"

अर्थात् हमने देखा है कि तलवार काट कर एक को दो बनाती है, परन्तु इस प्रेम-रूपी तलवार का काम कुछ विचित्र है। यह दो को एक करती है। प्रेम मानव को उसके अस्तित्व से जोड़ देती है। जोड़ ही नहीं, वरन घोल कर एक कर देती है। मुझे स्मरण है कि एक बार मेरे पूज्यवर 'श्री बाबू जी' ने लिखा था—'बिटिया ! अन्तर में जो तुम्हें कचोटन मालूम पड़ती है, यह प्रेम का ही एक रूप है और यह (प्रेम) तब तक रहता है, जब तक कि 'गुड़ और शीर मिल कर एक नहीं हो जाता है'।' साथ ही उन्होंने यह भी लिखा था कि 'मेरे तो पूरे बाईस वर्ष अशान्ति (ईश्वरीय प्रेम की बेचैनी) में ही बीते, परन्तु इसमें वह मजा था जो शान्ति में नहीं है। यद्यपि मुझे अब जान की कुर्बानी दिल से कुबूल होगी, परन्तु इस अवस्था से हटना नहीं।' इसलिए भाई, हमको भी अपने ऐसे लक्ष्य तक पहुँचना है, जिसके लिए प्रेम की उत्पत्ति हुई है। श्री रामचन्द्र मिशन के तृतीय नियम में दिया है कि 'प्रत्येक भाई को अपना ध्येय अवश्य निश्चित कर लेना चाहिए और वह यह कि ईश्वर तक पहुँच कर उसमें अपनी लय अवस्था प्राप्त करके पूर्ण-स्थिति प्राप्त कर ले; और जब तक यह बात प्राप्त न हो जावे, चैन न आवे।' बस, 'चैन न आवे' ही तो कसौटी है मानव को खरा उतार कर ईश्वरत्व में मिला देने की, 'उसमें' एक कर देने की और इसी लिए हमें 'प्रेम' की आवश्यकता है।

प्रिय बान्धवों, जहाँ तक मेरा अनुभव है, जो मुझे मेरे 'श्री बाबू जी' ने लखाया है, वह यही है कि मैंने तो देख लिया है कि महात्माओं का कहीं अलग सृजन नहीं होता, फकीर कहीं से बन कर नहीं आते। वे तो 'प्रेम' के प्रतीक होते हैं। धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन से तो जैसा कि 'श्री बाबू जी' ने अपनी अंगरेजी की पुस्तक 'Effieacy of Raj Yoga' के Conclusion खंड के अन्तिम Paragraph में लिखा है कि "By so doing you can become a philosopher or a learned-man but you cannot be a 'Yogi' without actual practice with love and devotion.'

किंचित इतना-सा प्रयास करके तो देखें। प्रयास कभी निष्फल नहीं जाता, अपनी दृष्टि कभी धोका नहीं देती है। तब इसका परिणाम क्या होगा कि आप स्वयं कह उठेंगे—

"हक़, नाहक़ में छुपा था, मुझे मालूम न था ;
चाँद बदली में छुपा था, मुझे मालूम न था।"

गीत

प्यारे पाहुन, अब घर आओ।

पलक - पाँवड़े डाले कब से, बैठे हैं दृग - तारे।
पथ को रहे बुहार, सींचते उसको अविरल जल से।
इन प्यासों को दरशन दे कर, इनकी प्यास बुझाओ।प्यारे

सब कुछ वार चुकी हैं तुम पर, यह अँखियाँ अनुरागी।
केवल साध देखने की ही, शेष रही बड़भागी।
इसी आश को पूरा कर प्रिय, अब तो रूप दिखाओ।प्यारे

बहुत सह चुकीं दुसह विरह ये, आँसू सूख चुके हैं।
अब उनसे है रक्त निकल कर, प्रेम बेलि को सींचे।
ऐसी दुःखद दशा पर अब तो, नैक तरस प्रिय खाओ। प्यारे

कहने में असमर्थ बिचारी, अपनी विरह-व्यथा है।
विधि ने वाणी छीन इन्हें ये भारी दण्ड दिया है।
'बन्दन' के इन वाणी-हीनों को, प्रिय कंठ लगाओ। प्यारे

—कुमारी केशर

प्रार्थना का ध्येय

[लेखक :—श्री ईश्वरसहाय, लखीमपुर खीरी]

हमारे सहज-मार्ग के दस नियमों में से नियम नं० २ यह है कि 'पूजा प्रार्थना से प्रारम्भ की जावे। प्रार्थना आत्मिक उन्नति के लिए होनी चाहिए और इस प्रकार की जावे कि हृदय प्रेम से भर आवे। प्रार्थना के महत्व पर विशेष कुछ कहना इसलिए आवश्यक नहीं कि इससे सब भलीभाँति परिचित हैं, परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि इससे अधिक लाभदायक और कोई चीज नहीं। हर मनुष्य को इस पर दृढ़ रहना आवश्यक है। इसी के द्वारा हमारी सब सांसारिक व आध्यात्मिक कठिनाइयों का सुलझाव प्राप्त होता है और हमारे कल्याण का मार्ग खुलता है।

प्रार्थना करते समय हमारी कुल शक्ति एक केन्द्र पर एकत्रित हो जाती है और हम उस महान शक्ति से चिपटते चले जाते हैं। परिणाम यह होता है कि ईश्वरीय शक्ति प्रवाहित होने लगती है और हमारी सफलता में सहायक बन जाती है। अब प्रश्न यह अवश्य रह जाता है कि कैसी बातों के लिए प्रार्थना करना उचित है? परन्तु इसका उत्तर उसके निकट ही मौजूद है अर्थात् जिस शक्ति से चिपट कर हम काम ले रहे हैं उसका अनुभव करते हुए हम उसको भी उसीमें लय कर दें। अब वह काम क्या हो सकता है? वह केवल ईश्वरीय काम है, जो हमारी ही भलाई और उन्नति से सम्बन्धित है। सांसारिक विषय इसके पश्चात् आते हैं। इनके लिए भी प्रार्थना करना वर्जित नहीं। यदि हमारी दृष्टि आध्यात्मिक लाभ पर स्थित है तो प्रार्थना का अभिप्राय तो केवल वही हो जाता है। यदि कहा जाय कि इसमें हमारी कोई सांसारिक कामना छिपी हुई है तो भाई, यदि सांसारिक विषय या कठिनाइयाँ ईश्वरीय मार्ग में हमें बाधा पहुँचाती हैं तो उनको हटाने के लिए प्रार्थना करना दोष नहीं है। हाँ, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करना व्यर्थ है, क्योंकि जब हम इतने बड़े 'मालिक' के सामने प्रार्थना में खड़े हों तो 'उससे' माँगना भी वही चीज चाहिए, जो कि हमारे जीवन की सफलता से सम्बन्धित हो। यह कहाँ तक ठीक कहा जा सकता है कि एक चक्रवर्ती महाराज से भिक्षा माँगने जाय और सवाल करे केवल दो पैसे का।

प्रार्थना में हम अपने विचार को उस महत् शक्ति की ओर केन्द्रित कर देते हैं और फिर जो कुछ हमें उसके सामने रखना है, शब्दों द्वारा प्रकट करते हैं। फिर उसी विचार को गहरा करते चले जाते हैं, यहाँ तक कि शब्द लुप्त हो जाते हैं और केवल विचार ही विचार रह जाता है। यह प्रार्थना का दूसरा दर्जा है। इससे आगे बढ़ने पर ख्याल भी लुप्त होने लगता है, केवल एक हल्का-सा गुमान-भर रह जाता है, जो बीच बीच में हमें प्रार्थना की याद दिलाता है। होते-होते यह दशा भी समाप्त हो जाती है, जब यह भी पता नहीं रहता है कि हम किस लिए बैठे थे। परन्तु हमारे अर्ध चेतन मन में वह ख्याल अवश्य उपस्थित है और यह आवयश्क भी है, क्योंकि बिना बीज के अखुआ नहीं फूट सकता, और जैसा बीज होगा वैसा ही फल प्राप्त होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी प्रार्थना का जो अभिप्राय है, उसी के अनुसार हमें फल प्राप्त होगा। साथ ही हम उस चीज के लिए जमीन भी वैसी ही बना लें, जैसी कि ऊपर वर्णन है, तो प्रार्थना स्वीकार होने में देर न लगेगी।

इसमें एक रहस्य अवश्य है, वह यह कि जब हम अपनी गरज लेकर प्रार्थना के लिये ध्यान में बैठते हैं तो

हम उस दशामें पहुँच जाते हैं, जो अधिक सूक्ष्म है अर्थात् हम अपने में ही प्रवेश करना आरम्भ कर देते हैं और उससे गहरा सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जब विचार की ठोसता भी दूर होने लगती है तो हम पहले से भी अधिक सूक्ष्म दशा में प्रवेश करने लगते हैं, जो उसके पश्चात् आती है। अब हमारे अन्दर उस काम को बनाने के लिये वैसा ही कम्पन (Vibration) आरम्भ हो जाता हैं और गहरे में प्रवेश करने पर हम उस शक्ति से चिमटने लगते हैं, जिसके कारण कम्पन (Vibration) उत्पन्न होता है और फिर उसमें स्थायी रूपसे टिक जाने का प्रयत्न करते हैं। अब हमें उस स्थान का भी पता नहीं रहता, जहाँ पर कि हमारा ख्याल टिका था। बस, यही प्रार्थना का ढंग होना चाहिए। उचित रीति से अभ्यास करने से या गुरु-कृपा से यह बात सुगमता से प्राप्त हो जाती है।

एक बात बिलकुल सरल यह है कि जब हम ईश्वर को बड़ा मानते हैं और उसकी महानता पूर्ण रूप से हमें मान्य है तो हमारे अन्दर नम्रता पैदा हो जाना आवश्यक है। इसका अर्थ यह हुआ कि स्थूलता से हम अलग होने लगें। स्थूलता से अलग होनेपर आध्यात्मिक शक्ति अवश्य ही प्रवाहित हो जायेगी। इसी प्रकार बढ़ते चले जाने पर हमारी पहुँच उस अन्तिम विन्दु तक हो सकती हैं, जहाँ से शक्ति प्रवाहित होती है। अब जो बात हम चाहेंगे वही होने लगेगी, और उसके करने वाले हमीं होंगे। परन्तु बिना उस महान् शक्ति को ध्यान में लिये यह सफलता असम्भव है। प्रार्थना का यह आवश्यक अंग है और इसपर हम सब को दृढ़ होना चाहिए। हमारे मिशन में प्रार्थना का यही ढंग रखा गया है, जो सबके लिये मान्य है।

इस विषय में मैं अपने प्रधानाचार्य श्रीरामचन्द्रजी महाराज का दिया हुआ एक वैज्ञानिक दृष्टान्त दे रहा हूँ कि Positive की शक्ति प्राप्त करने के लिए हमें Negative बन जाना होगा, तभी Positive Negative में प्रवाहित होने लगेगा और तब Negative स्वयं Positive की शक्ति से काम करने लग जायेगा। हमारी पूजा एवं प्रार्थना का लक्ष्य भी केवल इतना ही है कि हम Negative बनते जायँ, जिससे Positive (अर्थात् ईश्वरीय-शक्ति) शक्ति हमारे बनाने में सहायक होती जावे, और हम अपने लक्ष्य (ईश्वर) की प्राप्ति कर लें।

ब्रह्मचारी गङ्गानन्दजी लिखित धार्मिक पत्रों का अपूर्व संग्रह

उतराई

प्रकाशित हो गया

इस पुस्तक में आप के अनेकों ही धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक शंकाओं और समस्याओं का बहुत ही सुन्दर रूप से उत्तर दिया गया है। धार्मिक जनता इसे पढ़ कर अवश्य लाभ उठावे।

पता :—

सद्गुरू साधन संघ

६०, शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता।

एक सन्त की वाणी

छोटे-बड़े, निर्धन-धनी, कर प्यार सब को एक सम,
बढ़ें सभी मिल एक सम, कोई नहीं है बेश-कम ;
मत तू किसी से कर घृणा, सब की भलाई चाह रे,
तव मार्ग में काँटे धरे, वो फूल उसकी चाह रे।

निस्स्वार्थ सेवी हो सदा, मन मलिन होता स्वार्थ से,
जब तक रहेगा मन मलिन, नहिं भेंट हो परमार्थ से;
जो शुद्ध मन नर होय हैं, वे ईश दर्शन पाँय हैं,
मन के मलिन नहि स्वप्न में भी, ईश सम्मुख जाय हैं।

पीड़ा न दे तू हाथ से, कड़वा वचन मत बोल रे,
संकल्प मत कर अशुभ तू, सच बोल पूरा तोल रे ;
ऐसी किया कर भावना, नहिं दूर तुझ से लेश है,
रहता सदा तेरे निकट, पावन परम विश्वेश है।

जो धैर्य नहिं हैं धारते, भय देख घबरा जाय हैं,
सब कार्य उनका व्यर्थ है, नहिं सिद्धि वे नर पाय हैं ;
चिन्ता कभी मिटती नहीं, नहिं दुःख उनका जाय है,
पाते नहीं सुख लेश भी, नहिं शांति मुख दिखलाय है।

मत कर कमाई पाप का, तू भक्ति दे कर आड़ में,
बनते भगत ठगते जगत, वे पड़ते जलते भाँड़ में ;
व्यापार सच्चा कर सदा, मत छल-कपटके पास जा,
करता ठगी जो साधु बन कर, अधिक पाता है सजा।

संसार-भर में मात्र तेरा, एक सद्गुरु मित्र है,
सब बन्धु जग में बाँधते, करता वही निज तन्त्र है ;
नव जन्म तेरा है हुआ, सब बन्धनों को तोड़ दे,
नूतन भवन में वास कर, अब घर पुराना छोड़ दे।

संसार की यदि वस्तुओं में, चित्त तेरा जायगा,
तो चित्त चंचल होय, पर्दा बुद्धि पर पड़ जायगा।
रखते हुए भी आँख तू, बे-आँख का बन जायगा,
सर्वत्र व्यापक ईश भी, नहिं देखने तू पायगा।

हो लाभ अथवा हानि हो, सुख-दुःख या शीतोष्ण हो,
रख चित्त अपना शान्त, मत तू स्वप्न में भी खिन्न हो;
निन्दा-प्रशंसा हो भले ही, मान या अपमान हो,
रह तू सदा ही एक-सा, बस्ती भले सुनसान हो।

निन्दा-प्रशंसा कुछ नहीं, नहिं मान या अपमान है,
ऊँचा तथा नीचा नहीं, सब कल्पना अज्ञान है ;
माया अविद्या का रचा, संसार केवल नाम है,
है तत्त्व इसमें कुछ नहीं, तू तत्त्व ही सुख-धाम है।

श्रुति-टेर सुन दे ध्यान भोला, होश में आ चेत जा,
बचपन गया यौवन चला, आया बुढ़ापा चेत जा ;
है आ रहा यम का बुलावे पै बुलावा चेत जा,
क्या ठीक है दम जायके, आया न आया चेत जा।

जो केश काले भ्रमर थे, गाले रुई के बन गये,
थे दाँत हाथी-दाँत सम, मजबूत गिरने लग गये ;
आँखें चुरा आँखें गई हैं, दृष्टि मन्दी पड़ गई,
मुख हो गया है पोपला, तृष्णा अधिक है बढ़ गई।

नहिं कान देते काम अब, ऊँचा बहुत सुनने लगे,
पग डगमगाते चालते, है हाथ भी हिलने लगे ;
काया गली झुर्री पड़ी, हड्डी हुई है खोखली,
ज्यों जोंक चिन्ता-सर्पिणी ने, रक्त-चर्बी सोख ली।

सब इन्द्रियाँ बलहीन हैं, धनु सम कमर है झुक गई,
काया हुई बूढ़ी मगर, आशा नहीं बूढ़ी हुई ;
यमदूत तुझ को दे रहे हैं, कूच की यह सूचना,
आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! होता है तुझ को चेतना।

बहु काल तक सोया किया, अब मोह निद्रा त्याग रे,
सब कामनाएँ त्याग कर, ईश्वर-भजन में लाग रे ;
संसार जलती आग है, इस आग से बच भाग रे,
सब का भरोसा छोड़ दे, कर ईश में अनुराग रे।

है भोग सब घर रोग के, मत भोग में आसक्त हो,
चिन्ता करे मत अन्य की, विश्वेश में अनुरक्त हो ;
संसार में सुख है नहीं, जगदीश भज कर हो सुखी,
संसार को आशा करें, वे मूढ़ होते हैं दुखी।

आध्यात्मिकता और उसका रूप

★ श्री काशीराम अग्रवाल ★

यह एक बाजीगीरी तमाशा है कि कई भाई साधु वेष में पैसा कमाने के लिए लोगों को पानी पर चल कर दिखाना, जीभ छेदन कर लेना, दूसरों की गुप्त बातों को बता देना एवं वर्तमान-भविष्य की बातें बता कर भोले भाइयों को तथा माँ-बहनों को ठगने फिरना एवं अपने-आपको महात्मा-तपस्वी बतला कर नाना प्रकार के चमत्कार दिखाते हैं। बहुत-से ढोंगी भाई दर-दर की खाक छान डालते हैं, केवल पैसा कमाने के लिए एक मेस्मेरिज्म वाला अपने कुछ चमत्कार दिखला रहा था—रुमाल को लकड़ी बना देना, कागज फाड़-कर टुकड़ों के फूल बना देना, रस्सी के टुकड़े-टुकड़े करके उसे पूरी दिखा देना, गर्दन काट कर फिर वैसी ही कर देना, जीभ काट कर फिर जोड़ देना, मनुष्य को हवा में गायब कर देना, मरे हुए पशु को जिन्दा कर देना। मगर भाई, यह एक विद्या है। अमेरिका, जर्मनी, इंगलैंड में इस विद्या को सिखाने के स्कूल हैं। वहाँ से सीख कर हिन्दुस्थान में इस विद्या को दिखा कर पैसे कमाते हैं! बहुत-से वेषधारी साधु मेस्मेरिज्म को काम में लेते हैं, और एक पहुँचे हुए महात्मा कह-लाने लगते हैं! अपने हिन्दुस्थान में मेस्मेरिज्म को जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र इत्यादि कहते हैं। मगर क्या हुआ कि इन चीजों में फँस कर जीवन बिता दिया। अगर इतना अभ्यास उस सत्य की खोज के लिए करते, तो अपना एवं औरों का भी कल्याण करते! दुनिया को अन्धा बनाने के लिए, धोखा देने के लिए यह विद्या सीख भी ली, तो क्या हुआ, जब कि हम अन्दर सफा-चट ज्यों के त्यों बन्द पड़े हैं। मेस्मेरिज्म से इतना फायदा अवश्य है कि मान-प्रतिष्ठा मिलता है, बड़े पहुँचे हुए कहलाने लगते हैं, दुनिया आश्चर्य की दृष्टिसे देखने लग जाती है, और संसार में विख्याति हो जाती है! मगर असलियत (सचाई) में सब कुछ इससे उलटा होता है!

आज कल की दुनिया चमत्कार की तरफ बहुत झुकी हुई है ! एक बार एक भाई ने 'श्री बाबू जी महाराज' को पत्र में लिखा था कि हमें विश्वास जब होगा कि आप हमें कुछ चमत्कार दिखावें ?' 'श्री महाराज' ने क्या ही सुन्दर उत्तर में लिखा है कि भाई, आज की दुनिया में चमत्कार दिखाने वालों की भरमार है। अगर आपको चमत्कारों से प्रेम है, तो उनसे देख सकते हैं। यहाँ तो केवल उस घर से मतलब है, जिस घर से हम लोग आये थे और आकर भूल गये ! केवल अभ्यास द्वारा उस परम-धाम को पहुँचने की कोशिश करते हैं, जो आवागमन-रहित है। इस संस्था में आध्यात्मिक चीज अथाह भरी पड़ी है, आप लोग लाभ उठा सकते हैं, चमत्कार और बाजीगरी नहीं है ! आप ने महात्मा मान कर विश्वास क्यों नहीं किया ! यह एक व्यापार है, जो केवल पैसा कमाने के लिए ही किया जाता है। एक पापी से भी पापी अभ्यास द्वारा चमत्कार दिखाना केवल एक या दो महीने के अभ्यास से ही सीख सकता है। हठयौगिक क्रियाएँ भी पन्द्रह या बीस दिन में ही सीखा जा सकता है। नाकसे पानी पीना, नौली, बस्ती, धौती क्रिया करना, श्वास का ब्रह्माण्ड में चढ़ा लेना और मृत बन जाना, नाड़ी बन्द कर लेना और काले बिन्दु पर ध्यान करना एवं नजर बन्द कर देखना इत्यादि !

भाई यह 'सहज-मार्ग' एक बहुत बड़ी व ऊँची चीज है, आन्तरिक चीज है, जिसको लोग बहुत कम समझ पाते हैं। अगर हरि-कीर्त्तन, गाना-बजाना इत्यादि वे तो समझ पाते हैं, मगर इतनी ऊँची चीज को जो बड़ी ही सहज चीज है, नहीं समझ पाते हैं। यह एक आँख-मिचौनी का अभ्यास है, केवल आँखें बन्द करके पाँच मिनट ही पूजापर बैठना होता है। सहज-मार्ग एक बहुत बड़ा, सरल एवं बहुत उच्च कोटि का अभ्यास है, जो कि गुरु अपनी आन्तरिक शक्ति द्वारा अभ्यासी को ऊँचा उठाता हुआ 'सहज-मार्ग' द्वारा सत्य-धाम तक पहुँचा देता है।

अगर कोई भाई पूछे, 'सहज-मार्ग' कैसे हुआ, उत्तर में केवल यही कहा जाता है कि हमें विशेष कुछ भी जप-तप नहीं करना पड़ता, केवल गुरु के बताये हुए अभ्यास हृदय में ध्यान करना पड़ता है, और उस ध्यान अवस्था में अभ्यासी को केवल आँखें बन्द करके पन्द्रह-बीस मिनट एकान्त में गुरु के सम्मुख बैठना पड़ता है, और गुरु अपनी आन्तरिक शक्ति से अभ्यासी को अपनी गर्म सेंक से सेंकता हुआ उसे (जो कठोर मोम अपने-आप को कठोर बतलाता है, आगके सामने रंग बदल जाता है, पिघलकर पानी रूप बन जाता है) पिघलाता चला जाता है और अभ्यासी अपने में दिन-प्रति-दिन काफी परिवर्त्तन देखता है।

जिस समय मनुष्य कर्म करता हुआ भी अकर्मी रहे, जिस समय अपने-पराये का भेद दिल से जाता रहे तथा राग-द्वेष, मोह-ममता छूट जाये, हर्ष-शोक में मन की दशा समान रहे, इस अवस्था को समयोग कहते हैं, और संतों के यहाँ इसे सहज-समाधि कहते हैं। यह अवस्था कुछ दिन के अभ्यास से ही अभ्यासी में आ जाती है। मगर अभ्यासी अपने चारों तरफ गृहस्थी के पर्दे लपेटे हुए है, इससे कोई समझ नहीं सकता कि अभ्यासी की क्या अवस्था है ? केवल गुरु ही समझ एवं जान सकता है और कोई नहीं जान एवं समझ सकता।

सहज-समाधि वाला किसी नियत समय पर बैठ कर साधन करता हुआ दिखाई नहीं देगा, और न कुछ गाता-बजाता नजर आवेगा। अन्दर ही अन्दर घुलता चला जाता है, और आनन्द लेता रहता है, और न कहीं मन्दिरों में ही जाता नजर आवेगा। 'सहज-समाधि' वाला जप, तप एवं माला, तिलक, होम इत्यादि कुछ भी करता नहीं दिखेगा, बल्कि उसके उसके व्यवहार-काम ही उसके साधन होते हैं। अपने

कर्त्तव्य (Duty) का ठीक पालन कर लेना ही योग का अन्तिम लक्ष्य है।

बहुत-से भाई अभ्यास का नाम सुन कर डर जाते है और कहते हैं कि भाई, गृहस्थी में रहकर हम अभ्यास नहीं कर सकते, मगर वह भोले भाई यह नहीं समझते कि 'सहज-मार्ग' का अभ्यास, जो कुछ हम कर्म कर रहे हैं, यही तो अभ्यास है, और दूसरी नई चीज कुछ भी नहीं करनी पड़ती। हमारा दैनिक व्यवहार ही हमारा अभ्यास है, केवल अन्तर यही है कि ख्यालों को परिवर्तन करना पड़ता है। गुरु पर पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा कर लेना ही हमारा फर्ज है, फिर गुरु स्वयं ही सम्हालता है! यह कहना गलत है कि गृहस्थी में रह कर भक्ति नहीं हो सकती। गृहस्थीमें रह कर बहुत बड़ी भक्ति हो सकती है, जो हमारे ख्याल से संन्यास एवं अन्य कोई भी आश्रम में नहीं हो सकती। यह जरूर है कि बिना गुरु की कृपा के कुछ भी नहीं हो सकता। गुरु को ईश्वर से भी बढ़ कर शास्त्रों ने स्थान दिया है! यह सत्य है कि गुरु के बिना अगर पूरी जिन्दगी जंगलों में रह कर तपस्या में बिता देवें, तो भी मोक्ष नहीं पा सकता। बिना गुरु के पार होना असम्भव है। गुरु अभ्यासी की हर क्षण सम्हाल रखता है और जहाँ भी चढ़ाई करते-करते अटक गया, वहाँ अपनी आन्तरिक शक्ति द्वारा धक्का देता रहता है, और अभ्यासी शीघ्र से शीघ्र मोक्ष अवस्था पा लेता है। आन्तरिक शक्ति का नाम ही महाराज ने 'आत्माहुति' रखा है।

अब प्रश्न उठता है, सच्चा गुरु कैसे मिले? भाई, सच्चे गुरु की पहचान 'श्री बाबू जी' ने अपने शुभ सन्देश (message) एवं अंग्रेजी की 'Reality at Dawn' नामक अपनी पुस्तक में 'गुरु' अध्याय में बड़े अच्छे ढंग से समझा कर बतलाई है। संदेश में सच्चे गुरु की बतलाई हुई पहचान कुछ यहाँ भी लिख देता हूँ। जहाँ निस्स्वार्थता हो, सब में सच्ची मोहब्बत हो, लालच न हो, और सम दृष्टि हो एवं इन सब बातों की पहचान भी 'Reality at Dawn' में साफ-साफ लिख कर बता दी है एवं खास एक यह भी पहचान बतलाई है कि महात्मा के पास बैठ जाओ और अपने मन की गति पर ध्यान दो कि वह कहाँ तक, किस तरफ दौड़ रही है! अगर हमारे बैठते ही हमारे गन्दे विचारों का आना बन्द हो जाय, और ईश्वर-प्रेम में हृदय पिघल जाय, वही समझो, सच्चा फकीर है। महात्माओं के विचार हमारे अन्दर आने लगते हैं, मगर इन सब बातों में भी बहुत अन्तर है, सो बड़ी सावधानी से गुरु बनाना चाहिए। सच्चे गुरु की प्राप्ति के लिए सच्चे दिल से ईश्वर से प्रार्थना भी करो। सच्चा गुरु आज के जमाने में मिलना बड़ा ही कठिन हो गया है और सहज में मिल भी जाय, तो हम पहचान नहीं पाते, क्योंकि सच्चा महात्मा अपने चारों तरफ गृहस्थी के पर्दे लपेटे रहता है, जिससे हमारी अन्धी आँखें नहीं पहचान पातीं, और सच्चा महात्मा अपने-आपको दुनिया के सामने प्रगट नहीं करता और गुदड़ियों में लालों की भाँति छिपा रहता है।

जब सच्चा गुरु मिल जावे, तो उसमें घुल-मिल जाना चाहिए और अपनी पहचान भी खो बैठे, और प्रेम का ऐसा रंग बना लेवे कि एक ही रंग में हो जावे। मगर भाई, प्रेम भी एक अनोखी चीज है। प्रेम क्या चीज है? प्रेम, भाई, एक प्रकार की अग्नि है, जो हृदय को जलाया करती है। इस जलन के विषय में लिखना मेरी कोरी मूर्खता है, इस प्रेम-अग्नि के विषय में कुछ लिखा नहीं जा सकता और न लिख कर बतलाया ही जा सकता है। यह एक अनुभव की चीज है, जो अनुभव से ही पता लग सकता है। इस धधकती अग्नि में अभ्यासी निर्भय होकर कूद पड़ता है और दिन-रात सब कुछ काम-काज करता हुआ भी जलता

रहता है। प्रेम के बन्धन में और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, क्योंकि अब तो प्रेमी-प्रियतम का नाता हो गया, गहरा सम्बन्ध हो गया, और उसे नींद आती है या नहीं, यह भी पता नहीं रहता। इस अवस्था का नाम जाग्रत अवस्था है? प्रथम बार तो अभ्यासी इस अग्नि में कूद कर पश्चात्ताप करता है। एक अभ्यासी ने अपने एक सतसंगी भाई के पत्र में लिखा भी था कि भाई, मुझे पता न था कि इस अग्नि में इतना अधिक जलना पड़ता है, अन्यथा मैं न कूदता। मगर अभ्यासी इस अग्नि-कांड से निकलता इसलिए नहीं कि उसे इस अग्नि की बेचैनी में अद्भुत आनन्द आता है, बड़ा ही मधुर-मधुर मीठा-मीठा स्वाद का रस लेता रहता है, इसी से डर कर भाग नहीं पाता। और जब अधिक बेचैनी हो जाती है, तो एकान्त पा कर छिप-छिप कर रो लेता है, अपने गर्म आहों के आँसू बहा कर कुछ हलकापन ले आता है! यह सब बातें हर एक अभ्यासी में पाई जाती है, जो कि 'सहज-मार्ग' पर चल रहे हैं। मगर इन सब बातों को कोई भी नहीं जान पाता कि क्या हालत है, क्या बीमारी है, केवल एक गुरु ही जान सकता है।

अग्नि में जलने से क्या लाभ होता है? सो भाई, यह बेचैनी (अग्नि) पूजा में बैठते ही सच्चे दिल से ईश्वर में लय अवस्था प्राप्त कर लेता है, वैराग्य की हालत बढ़ जाती है और दुर्गुणों से घृणा हो जाती है, तब सब दुर्गुण धीरे-धीरे अभ्यासी छोड़ता चला जाता है।

यह राजयोग के अन्तर्गत 'सहज-मार्ग' के अभ्यास में ज्यों ही पूजा पर बैठे कि आँखों में प्रेमाश्रु भर आते हैं और रो-रोकर अपनी जलती हुई बेचैनी-रूपी अग्नि को शान्ति करना चाहता है, मगर शान्त होने के बजाय वह और भी बढ़ती ही जाती है। मगर इस जलन में हृदय की कालिमा, गन्दे विचार, क्रोध, लोभ आदि सब दुर्गुण जल कर राख हो जाते हैं और हृदय सब सांसारिक वस्तुओं से शून्य हो जाता है। और अपने मालिक को याद में ही सब काम-काज करता रहता है। यह अभ्यासी की प्रथम Stage है, और कुछ समय बाद ही यह हाल हो जाता है कि ज्यों ही पूजा पर बैठा कि गहरी निद्रा की भाँति गुम-सुम हो जाता है और यह गुम-सुम समाधि अवस्था होती है। गहरी समाधि में बैठा रहता है और अपने मन का एवं संसारी वस्तुओं का ख्याल तक नहीं रहता और एक गहरी निद्रा की भाँति समाधि में आन्तरिक पर्दों पर क्या-क्या देखता रहता है, यह लिखा नहीं जा सकता। उस समाधि अवस्था का आनन्द गूँगे के गुड़ के स्वाद के सदृश्य होता है कि बतलाना महा कठिन है।

अभ्यासी को यह सब अवस्थाएँ होती रहती हैं, मगर कोई इन सब बातों को समझ भी नहीं पाते। वैराग्य भी हद तक आ जाता है, मगर अभ्यासी वैराग्य अवस्था में नुकसान नहीं उठा सकता, क्योंकि गुरु उसे क्षण-क्षण सम्हाले रहता है। वैराग्य दशा में बेचारे के होंठ बन्द हो जाते हैं, आत्मघात करने को जी चाहता है, तन के कपड़े फाड़ डालना एवं सब कुछ द्रव्य लुटा देना, जंगलों में घबरा कर भाग जाना इत्यादि हाल हो जाता है। जो चंचलता थी, वह भी जाती रहती है और अन्दर ही अन्दर भिदता चला जाता है, और संसार का झूठा पर्दा आँखों के सामने से हटता चला जाता है और नेत्रों में सच्चे आत्मा का प्रकाश मिल जाता है। मगर यह सब अवस्था होते हुए भी अभ्यासी सब काम ज्यों का त्यों एवं उससे भी कहीं अच्छे ढंग से करने लग जाता है और गृहस्थ के काम में कोई भी रुकावट नहीं आती! यह जरूर है कि पहले अभ्यासी माला-तिलक एवं कीर्तन-भजन आदि ऊपरी चीजें किया करता था, तो उसे महानता की दृष्टि से देखते थे, मगर इस अभ्यास

में लोग नास्तिक समझने लग जाते हैं, इसलिए कि इस अभ्यास में ढोंग-दिखावा कुछ नहीं रहता। गृहस्थी के झंझटों से ऊब कर जो भाई रो-रोकर जिन्दगी बिताया करते थे, वह अब अभ्यास के द्वारा उन झंझटों से भी बढ़ कर अनेकों झंझट आ जाने पर भी हँस कर ही जीवन बिताते हैं। यह सब केवल ख्यालों पर निर्भर रहता है और अभ्यास इस लिए किया जाता है कि हमारे ख्यालों में परिवर्तन हो जाये! गृहस्थी के हर प्रकार के झंझटों में दुःख-सुखों में भी क्या ही आनन्द का अनुभव अभ्यासी करता है, यह लिखा नहीं जा सकता।

भाई, मानो या न मानो, मगर अन्तस की आवाज यही निकलती है कि भाई, सच पूछो, तो पूज्य श्रीप्रधान जी का वर्तमान की हालत देखते हुए कितना 'सहज-मार्ग' है कि एक ही जन्म में मनुष्य मुक्ति पा जाता है। यह बिलकुल सत्य है, परन्तु मानेगा वही, जिसने इसका अभ्यास करके अपार आनन्द को पा लिया एवं लख लिया है। और कितने 'सहज-मार्ग' द्वारा श्री प्रधान जी कितने प्रेम से रास्तेपर चलाते हुए उस परम-धाम तक पहुँचा देते हैं कि वहाँ से फिर आवा-गमन-रहित हो जाते हैं। एक बहन ने क्या ही सुन्दर लिखा है—

'अब नाहीं गँवाऊँ जग झूठा है, सुन्दर योगेश्वर आय गये'

उपरोक्त शब्दों से एक बहन के भावों का पता चलता है कि जिन्दगी को बिना गुरु के बिता दी, मगर अब सम्हल गई और प्रेम हृदय के उबलते गुब्बारों को गाने लगी कि अब जिन्दगी का शेष समय व्यर्थ नहीं खोऊँगी, जग सचमुच झूठा है, यह अभ्यास से पता चल गया कि वास्तव में संसार का क्या रूप है। फिर कहती है—सुन्दर योगेश्वर आ चुके, मुझे मेरा 'प्रभु' प्राप्त हो गया, अब भय भी नहीं! मुझे सच्चा सद्गुरु मिल गया! भाई, बहुत-से भाई वाद-विवाद करने लग जाते हैं कि ईश्वर शंकर है, कोई विष्णु बताने लग जाता है, मगर भाई, ईश्वर ब्रह्मा-विष्णु से भी परे है। और ईश्वर चाहे जैसा भी है; साकार चाहे निराकार, हम उससे प्रेम करते हैं, जो सब जगह रमा हुआ है और सर्वव्यापी है। 'श्री बाबू जी महाराज' के शब्दों में यह सत्य है कि आजकल के लोग देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, उनके नाम से व्रत करते हैं तथा नित्य प्रति दिन पानी चढ़ाते हैं, दीपक जलाते हैं, लेकिन सब स्वार्थ-हित पूजा करते हैं। यह तो हम अपने स्वार्थ के लिए पूजा करते हैं कि हमारा दु.ख या किसी चीज का अभाव दूर हो जाये। और हमें सुख, धन, सन्तान आदि प्राप्त हो जावें। लेकिन वे स्वार्थी पुजारी उन मजदूरों की भांति है, जो मजदूरी करते हैं, और पैसे ले लेते हैं। इस प्रकार हम ईश्वर-उपासना करते हैं, और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं! दूसरे हम अपने 'मालिक' की पूजा नहीं करते, बल्कि उसके नौकरों की पूजा करते है। कितनी ही ऐसी जटिल समस्यायें 'श्री बाबू जी महाराज' लिखित अंग्रेजी की 'Reality of Dawn' नामक पुस्तक में सुलझाया है, जो मनुष्यों को जकड़े रहती हैं और मनुष्य अपनी जिन्दगी में रोता रहता है, महान दुखी रहता है।

ईश्वर सबका भला करे। और अमीर-गरीबका ख्याल अपने परम-पिता की गोद में बैठकर भुला दें और एक हो जावें, जो कि वास्तव में है ही। ~~प्रेमीजन, इस लेख की त्रुटियोंपर ध्यान न देकर क्षमा करें।~~

जीवन

[कुमारी कस्तूरी, श्री रामचन्द्र मिशन की एक सेविका]

वह जीवन क्या, जिस जीवन में, जीवन को मुक्त बना न सके।

सब जीवन ऐसे ही बीत गयो,
प्रभु को नहिं ठौर दियो हिये में,

वह पूजन क्या, जिस पूजन से, हृदय को शून्य बना न सके। वह··

सब रैन गई अब रोहिनी लागि,
जगो मन नैकु विचार करे,

अब नाहिं गँवाओ जग झूठा है, सुन्दर योगेश्वर आय गये। वह···

अब रैन कहाँ जो सोवत है,
उत ठौर कहाँ जो रोवत है,

वह हिम्मत क्या जिस हिम्मत से, अपनेको आप उठा न सके। वह···

चहुँ ओर बजी दुन्दुभि 'सन्ध्या'
आकाश से पुष्प झरे प्रति छन,

चल सुन्दर मूर्ति निहार रे मन, अनुपम सद्गुरु अवतार लिये। वह—

शुभ सन्देश

[लेखक :—श्री रामचन्द्रजी महराज]

साधारणतः लोगों में यही विचार फैला हुआ है कि केवल क्रिया ही जो हमें बताई जाती है, वह स्वयं पूर्ण-दशा पर पहुँचाने के लिए यथेष्ट है। इसके अतिरिक्त उनका विचार दौड़ता ही नहीं। यदि हम अपनी नींव, जिस पर हमें आध्यात्मिकता का भवन बनाना है, राजयोग बतलाते हैं, और जो वास्तव में है भी, तो सम्भव है कि लोगों का विचार इसकी तह तक न पहुँचता हो और केवल नियमों के पालन तक ही उनकी दृष्टि रहती हो। यह अवश्य है कि मेरे साथ Transmi-sion (प्राण-आहुति) की भी हवा लगती रहती है। परन्तु फिर भी एक वस्तु जो शेष रह जाती है, वह है प्रेम और भक्ति। क्रिया (अर्थात् ध्यान) के साथ यह चीज चलना आवश्यक है। श्री कृष्णजी महाराज ने राजयोग में इस चीज को भी सम्मिलित किया था, जिससे शीघ्रता हो जावे और साधक अपने लक्ष्य पर शीघ्र ही पहुँच सके। किन्तु इन बातों को अपने में उत्पन्न करना आप ही का काम है। उपाय यह अवश्य है कि ईश्वर का सतत् स्मरण रखने का प्रयत्न किया जावे। इसमें लोग यह एतराज कर सकते हैं कि मानव-मस्तिष्क प्रति समय एक ही ओर लगा हुआ नहीं रह सकता है, इसीलिए कि मस्तिष्क इतना थक जायेगा कि कदाचित वह इसे एकाध दिन ही स्थायी रख सकता है। मैं साधारणतया लोगों में यही शिकायत देखकर कुछ आवश्यक बातें लिख रहा हूँ।

जो भी कार्य आप करते हैं, उसको यह समझ कर करें कि ईश्वर की आज्ञा है, इसलिये मेरा कर्तव्य है, तो स्मरण की दशा अवश्य बनी रहने लगेगी तथा इसका एक लाभ यह होगा कि संस्कार बनना बिल्कुल बन्द हो जायँगे। हर समय स्मरण रखने से ईश्वर में लगाव भी उत्पन्न हो जाता है और भाई क्योंकि हमारे विचार में गर्मी उपस्थित है, इसलिए कुछ उभार की दशा (अर्थात् प्रेम के उभार की) उत्पन्न होने लगती है, तथा धीरे-धीरे इसी के द्वारा भक्ति का पूर्ण रूप आ जाता है। जरा लोग इसकी आदत डाल कर तो देखें, फिर देखिए कि प्रेम उत्पन्न होता है कि नहीं। यह वस्तु तो नितान्त आवश्यक है। दूसरी, सदाचार की बात, जो अत्यन्त आवश्यक है; वह यह कि हम कोई कर्म ऐसा न करें कि जिससे लोग उँगली उठाएँ। हमारे दैनिक जीवन के नियम तथा सब के साथ व्यवहार बहुत ही भला एवं सीधा-सादा होना चाहिए। इससे आपके मन को भी सन्तोष मिलेगा और शान्ति की अवस्था का आरम्भ स्वयं हो आपके अंतर में प्रस्फुटित होने लगेगा। एक भाई ने मुझसे पूछा था कि जब लोग प्रेम करना नहीं सीखते, तो अभ्यास के नियम (method) में कोई ऐसा संशोधन होना चाहिए, जिससे यह बात भी सिद्ध हो सके। सोचते-सोचते ईश्वर ने मेरी सहायता की और यह बात भी मेरी समझ में आ गई। चुनाँचे जो अभ्यास आप कर रहे हैं, उसमें थोड़ा-सा संशोधन कर दिया गया। मैंने लोगों को दो-एक अभ्यास बतलाये हैं। जो उसमें यह चीज पैदा कर लें कि जिसका ध्यान मैं कर रहा हूँ, वह (अर्थात् ईश्वर) मुझको अपनी ओर आकर्षित (खींच) कर रहा है। अर्थात् जो लोग ईश्वर की ज्योति का ध्यान हृदय में (जैसा कि मैंने उन्हें बतलाया

है) करते हैं, वह ध्यान करते समय इस बात पर भी ध्यान लगा दें कि ईश्वर का प्रकाश जो हृदय में उपस्थित है, वह मुझे अपनी ओर आकर्षित (खींच) कर रहा है। फिर आप लोग देखें कि भक्ति व प्रेम कैसे उत्पन्न नहीं होता है। हाँ, इतनी बात अवश्य है और इतना मैं अवश्य कहूँगा कि लगाव उत्पन्न करना आपको भी चाहिए, इसलिए कि यदि आप लोग यह बात नहीं करते, तो सेवक (बन्दगी) का कर्तव्य, जो आप पर आवश्यक है, आप पूर्ण नहीं करते और फकीरी (साधुता) या मनुष्यता इसी में है कि कर्तव्य-पालन पूर्ण हो जाय। वह मनुष्य मनुष्य ही नहीं, जिसकी दृष्टि अपनी ओर नहीं जाती तथा वास्तविक खोज इसी में है कि हमारी दृष्टि हर समय अपनी ही ओर रहे, और यह वस्तु हमको धुर से मिली है। यदि इसी बात का नियम अभ्यासी कर ले (अर्थात् दृष्टि को आन्तरिक करते जावे) तो आप की स्थिति वहीं पर होगी, जहाँ से कि यह वस्तु हमें मिली है अर्थात् हम मूल भण्डार (असल-भण्डार) में अपना एक चिन्ह स्थित कर देते हैं। फिर हमें केवल अपने विस्तार का रूप उत्पन्न करना शेष रह जाता है।

अब विस्तार का रूप कैसे पैदा करें? इसके लिये यही अभ्यास, जो मैंने बताया है, उसका एक अंग है (अर्थात् ईश्वर-ध्यान के साथ अंतर्मुखी रहने का प्रयत्न भी करें)। इतनी सरल बातें मैं बताता हूँ, जिनका करना मनुष्य के लिये (गृहस्थी के साथ सभी) बहुत ही सरल है, यदि उनमें ईश्वर-प्राप्ति की तड़प हो। ईश्वर कहीं लोगों में सच्ची तड़प उत्पन्न कर दे और ईश्वर करे ऐसा ही हो, तो फिर काम बनते देर नहीं लगती। लोगोंको शान्ति की खोज है तो भला इस बेचैनी (तड़प) के लिये कौन तैयार हो? मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जो आनन्द इस बेचैनी (अर्थात् ईश्वरोय-स्मरण) में है, वह शान्ति में नहीं मिलता। जिसको लोग शान्ति कहते हैं, वास्तव में मेरी समझ में वह कमाल (परिपक्वता) की चीज है, जिसका तलछट अभ्यास में कुछ अवश्य मिल जाता है। और जो इस बात का प्रमाण देता है कि उसका कोई मुख्य बिन्दु (Centre) अवश्य है। बेचैनी बढ़ते-बढ़ते अर्थात जब यह बेचैनी कमाल (सीमा) पर पहुँचती है और सीमा को पार कर लेती है, तब शान्ति (वास्तविक) का आरम्भ होता है। उससे आगे अभी लिखना बेकार है। लिखने का अर्थ केवल यही है कि लोग 'उससे' (ईश्वर से) मिलने के लिये बेचैन रहें और इसी से मुझे भी शान्ति मिलेगी। यदि आप लोग अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि जो कुछ भी सेवा मैं लोगों की कर रहा हूँ, उसके बदले में मुझे शान्ति मिले तो यही उपाय हो सकता है कि आप लोग भी बेचैन रहें।

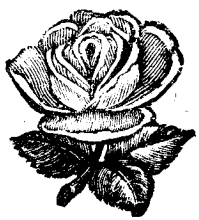

मेरा जीवन

[लेखक :—श्री गजानन अग्रवाल]

आध्यात्मिक जीवन एक तरल स्वादु पदार्थ के समान है, जिसका गुण देखने या भापने मात्र से अनुभव नहीं होता है, बल्कि उसको अपनाने तथा ग्रहण करने से अनुभव होता है। देखने में तो आध्यात्मिकता जरूर भारी तथा घृणास्पद मालूम देता है, लेकिन उसको ग्रहण करने से असली रहस्य का अनुभव हो जाता है।

मैं इस आध्यात्मिक जाल से बहुत दूर था, केवल दुनियादारी के कामों में ही संलग्न रहता था। मेरे सामने हमेशा दुनिया का नक्शा ही लटकता रढ़ता था और मैं इसके सिवाय कुछ भी नहीं जानता था। संयोगवश मैं भाई कासीराम जो की संगतमें पड़ गया। पहले-पहल तो मुझे इसकी आँख-मिचौनी तथा इसको पूजा पर बहुत क्षोभ आता था तथा हँसी भी आती थी। मुझे इसका कारण समझ में नहीं आया। उन्होंने बताया कि इस गृहस्थ-आश्रम में उस मालिक की याद बहुत महत्व रखती है। इसको अपना गृहस्थी चलाने के साथ आत्म-सुधार अवश्य करना चाहिए, जिससे हमारा कल्याण हो। मुझे इनकी बातों पर विश्वास न होता था कि आखिर यह सत्य है या झूठ, लेकिन अहोभाग्य मुझे श्री रामचन्द्र जी महाराज जी से मिलने का अवसर मिल गया और देखा कि सचमुच हम असली रास्ते को भूल रहे हैं और एक अनन्त रास्ते को अपना रहे हैं, जिसका ध्येय केवल सांसारिक भोग भोगना है और कुछ नहीं करना है। नहीं, इसके साथ हमको आत्म-विकास भी जरूर करना है, हमारा ध्येय ईश्वर को पाना है। इसको पाने के निमित्त मनुष्य इस संसार में बार-बार जन्म लेता है और जब तक उसको नहीं पा लेता है, जन्म-मरण का चक्कर चलता ही रहता है और हमको छुटकारा नहीं मिलता है। मुझे पूजा की क्रिया बतलाई गई कि कैसे हम उस मालिक की याद कर सकें। पूजा में मन को एकाग्र करके केवल मालिक का ध्यान मन में लाया जाता है और उस मालिक की याद में हृदय को प्रेम से सींचा जाता है। यानी हम उसे ऐसे याद करें कि हमारा हृदय भर आये और प्रेम-अश्रु गिरने लग जायँ।

मुझे पूजा में वह आनन्द आता है, जो संसार के किसी पदार्थ में नहीं आता। मनकी निर्मलता एवं विकार हटते चले जाते हैं और उनके स्थान पर शुद्ध एवं पवित्र वातावरण छा जाता है। काम, क्रोध, लोभ और मोह का धीरे-धीरे बहिष्कार होने लग जाता है और मन की विकलता एवं चंचलता का नाश हो जाता है; बल्कि प्रेमसे भरा रहता है और क्या ही आनन्द आता है। वह तो अभ्यासी ही जानता है।

अभी तक तो मेरे जीवन में पूजा का यथेष्ट स्थान है और चाहता हूँ कि अनुभव करता चलूँ और अपने ध्येय तक पहुँच जाऊँ।

प्राण-आहुति

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज फतेहगढ़ निवासी से लोग बहुत कम परिचित हैं। कारण यह है कि आप एक साधारण गृहस्थ थे और बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते थे। किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्रमें अद्वितीय थे और आप के जीवन में कोई ऐसा दिखावा या आडम्बर न था, जिससे आप की आध्यात्मिक पहुँच का अनुमान किया जा सकता। सच तो यह है कि आप की महानता का अनुमान लगाना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव था। यथार्थ में ऐसी महान आत्मायें कहीं हजारों वर्ष के बाद केवल उस समय पर अवतीर्ण होती हैं, जब कि संसार को उनको आवश्यकता होती है। आप ने आध्यात्मिक विद्या की ऐसी-ऐसी गुत्थियाँ सुलझाई हैं, जिनका उदाहरण आध्यात्मिक-इतिहास में नहीं मिलता, और जिनका अनुभव केवल अभ्यास द्वारा ही हो सकता हैं।

आप प्राणाहुति द्वारा अभ्यासी में यौगिक-शक्तिका संचार करते थे, जिसके प्रभाव से, वह मानसिक-विकार और कठिनाइयाँ, जो आध्यात्सिक-यात्रा में बाधक होती है, दूर हो जाती हैं और अभ्यासी बिना अधिक परिश्रम के आध्यात्मिक-मार्गपर अग्रसर हो जाता है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिकता के चटियल मैदान में उसकी चाल अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

प्राणा-हुति एक योगिक-क्रिया है, जिसके द्वारा प्राणाहुतिवेत्ता अपनी इच्छा-शक्ति से उन पर्दों को, जो कि आत्मा के गिर्द लिपटे हुए हैं, फाड़ता हुआ अभ्यासी को बड़ी सुगमता और वेगसे अपने लक्ष्य की ओर ले जाता है। प्राणाहुति द्वारा किसी मनुष्य के एक दम से किसी अत्यन्त उच्च आध्यात्मिक-श्रेणीपर पहुँचा देना भी सम्भव है। इतना ही नहीं, इसी क्रिया द्वारा बिना अभ्यास के भी उच्च शिखरपर पहुँचाया जा सकता है, परन्तु खेद है कि इस गिरे हुए जमाने में हम अपने ऋषियों की इस प्राचीन वस्तु को इस प्रकार भूल गये, मानो कभी जानते ही न थे। यहाँ तक कि यदि किसी ने इस शक्ति का प्रयोग भी किया, तो उसको हम मेस्मेरेजिम या हिप्नोटिज्म ही समझे। मानो इस महान शक्तिकी वास्तविकता को हमने बिल्कुल ही गिरा दिया। बात क्या थी कि हम स्वयं काफी गिर चुके थे, यहाँ तक कि हममें रंग और लाल की पहिचान भी न रही थी, इस कारण से इसकी वास्तविकता को पहिचान न सके। मेस्मैरेजम या हिप्नोटिज्ममें इच्छा-शक्ति का प्रयोग केवल चेटक-नाटक दिखाने में ही किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि medium (माध्यम) की इच्छा-शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है और उसका मस्तिष्क बिलकुल बेकार हो जाता है। आध्यात्मिकता में चूँकि इमारा सम्बन्ध केवल आत्मासे होता है, इसलिए शक्ति-द्वारा हम अभ्यासी की आत्मा के गिर्द जो आवरण लिपटे हुए हैं, उनको दूर करते हैं।

यदि आप प्रश्न करें कि प्राण शक्ति-संचारक आध्यात्मिक-क्षेत्र में क्या काम करता है और किस प्रकार अभ्यासी को आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कराता है? तो उत्तर यह है कि हर चक्रपर कुछ ऐसी शिकनें होती हैं जिनको आवरण कहा जा सकता है। चक्र की बनावट मकड़ी के जाले को सी होती है। इसमें एक केन्द्र-सा होता है, जहाँ से जाल चारों ओर को फैला होता है। इसी प्रकार से प्रत्येक चक्र पर एक मुख्य गुत्थी होती है। और उसके गिर्द वही शिकने जाल के

रूप में फैली होती हैं। यही दशा सब चक्रों पर होती है। प्राणाहुति-संचारक सर्व प्रथम यही मुख्य गुत्थी लेता है और अपनी शक्ति द्वारा इसको खोल देता है, जिससे उस कुल चक्र में प्रकाश फैल जाता है और हम उसमें भ्रमण करना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि मुख्य गुत्थी पहले न खोली जाय और हर पर्दे में पृथक-पृथक भ्रमण प्रारम्भ किया जाय तो एक ही चक्र में सैकड़ों वर्ष लगेंगे। अब प्राणाहुति के महत्व का अनुमान इससे किया जा सकता है कि जिस काममें हमको सैकड़ों वर्ष लगते हैं, प्राणाहुति की सहायता से वही काम मिनटों में किया जा सकता है। परन्तु साधारणतः प्राण-शक्ति संचालक कभी इतनी जल्दी नहीं करता। क्योंकि इस प्रकार अभ्यासी को उसकी घाटी-घाटी की जानकारी नहीं होने पाती। इसी प्रकार से एक-एक चक्र लेते हुए और उनको शुद्ध करके उसमें अभ्यासी को भ्रमण कराते हुए प्राण-शक्ति-संचालक अपनी शक्ति द्वारा आगे बढ़ाता चला जाता है तथा प्रत्येक चक्र के बन्धनों को तोड़ता हुआ उसका रास्ता आगे के लिए साफ कर देता है। आरम्भ से ही सबसे पहला काम जो प्राण-शक्ति संचालक करता है, वह यह है कि वह अभ्यासी के मन का झुकाव ऊपर की ओर फेर देता है, जिससे उसका मन ईश्वर-सम्बन्धी चिन्तन में लग जाता है।

अब मन क्या चीज है? इसके विषय में मिशन के प्रधान जी का यह कथन है कि सृष्टि के आरम्भ के समय जो 'क्षोभ' उत्पन्न हुआ तथा जो प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कारण हुआ उसी 'क्षोभ' की शक्ति का एक भाग 'मन' के रूपमें उपस्थित हुआ, जो कि प्रत्येक जीव-धारी के हिस्से में आया। मनुष्य में यही चीज श्रेष्ठ रूप में उतरी, यही हमारा 'मन' है, और इसके पीछे वही आदि-शक्ति, जो 'क्षोभ' के पीछे थी, मौजूद है। अब मन की दशा के अधिक तेज होने पर उसके पीछे वाली शक्ति का बोध कम हो जाता है। प्राणाहुति द्वारा सबसे पहले इसीको साफ करते हैं, जिससे इसके अनुचित परमाणुओं का प्रभाव नष्ट हो जावे और इसका झुकाव ईश्वरी-मन की ओर (जिसे मैंने 'क्षोभ' कहा है) हो जावे। प्राण-शक्ति-संचारक अपनी शक्ति द्वारा अभ्यासी के एक-एक चक्र को शुद्ध और प्रकाशित करता चला जाता है, जिससे उसकी चित्त की वृत्तियों का निरोध स्वयं होने लगता है। इस प्रकार वर्षों का काम मिनटों में बिना अधिक परिश्रम के हो जाता है।

अब आप ही विचार करें कि क्या कोई अन्य साधन इससे सहज आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करने का हो सकता है? कदापि नहीं। यह केवल प्राणाहुति की शक्ति है, जो एक क्षण में अभ्यासी को कुल चक्रों से पार कराके उसको उन्नति के अन्तिम शिखर पर पहुँचा देती है। इस तरीके में प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, चाहे वृद्ध हो या युवा आध्यात्मिक लाभ पूर्णतया उठा सकता है। मुझे आश्चर्य यह है कि लोग इसे क्यों नहीं अपनाते, जिससे उन्नति शीघ्र तथा अनिवार्य है। समय का बचा लेना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि हम नहीं कह सकते कि काल हमें कब आ दबावे। इस कारण हम शीघ्र से शीघ्र ध्येय की प्राप्ति में सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करें और यह प्राणाहुति द्वारा प्राप्त हो सकता है। ईश्वर को हम सबको ऐसा ही प्राणाहुतिवेत्ता मिल जावे और हमारी उस पर श्रद्धा हो जावे, जिससे कि हमारा मार्ग सुगम और सरल हो जावे।

सहज मार्ग के दस नियम

१ प्रत्येक भाई प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठे, और संध्योपासना नियमित समय पर, जहाँ तक हो सके, समाप्त कर ले। पूजा के लिए एक प्रथम स्थान और आसन नियत कर ले। यथाशक्ति एक ही आसन से बैठने की आदत डाले, और शारीरिक व मानसिक पवित्रता का अधिक ध्यान रखें।

२ पूजा प्रार्थना से आरम्भ की जावे। प्रार्थना आत्मिक उन्नति के लिए होना चाहिए, और इस तरह पर की जावे कि हृदय प्रेम से भर आवे।

३ प्रत्येक भाई को चाहिए कि अपना ध्येय अवश्य निश्चित कर ले, और वह यह कि ईश्वर तक पहुँच कर उसमें अपनी लय अवस्था प्राप्त करके पूर्ण स्थिति प्राप्त कर ले, और जब तक यह बात प्राप्त न हो जावे चैन आवे।

४ अपना जीवन साधारण बना लेवें, और वह ऐसा साधारण हो कि नेचर (आदि प्रकृति) से मिल-जुल जावे।

५ सच बोले और प्रत्येक कष्ट को ईश्वर की तरफ से अपनी भलाई के लिए समझे, और उसको धन्यवाद दे।

६ सारे जगत को अपना भाई समझे, और सबके साथ ऐसा ही व्यवहार करे।

७ यदि किसी से कोई कष्ट पहुँचे, तो उसका बदला लेने के इच्छुक न हों, वरन् ईश्वर की तरफ से समझें और उसको धन्यवाद दें।

८ भोजन करने के समम जो कुछ मिल जावे, प्रसन्नता से पावें और ईश्वर की याद में भोजन करें, शुद्ध और पवित्र कमाई का ध्यान रहे।

९ अपना रहन-सहन और व्यवहार इतना सुन्दर बना ले कि जिसको देखने मात्र से ही लोगों को पवित्र आत्मा होने का भास हो, और लोग उससे प्रेम करने लगें।

१० यदि कोई अपराध भूल से हो जावे तो सोते समय ईश्वर को अपने सन्मुख समझ कर उससे दीनता की अवस्था में क्षमा माँगें और पश्चात्ताप करें, और प्रार्थना व प्रयत्न भी करें कि भविष्य में कोई अपराध न होने पावे।

Shree Ramchandra Mission

Shahjahanpur, U. P., India.

Great men are not accidentally born. They are born when the world needs them most. Such is the course of nature. The present life of gross materialism is leading the world speedily to a state of degradation and decay. Selfishness, prejudice, and vanity are the main features of a present day life. Morality is tottering hopelessly. Irreligiousness is gaining in almost every mind. Ungodliness is spreading all over. Clouds of ignorance and sin are covering the whole atmosphere. Under such conditions, the great Divine sould appeared in the world in the form of Samarth Guru Mahatma Ram Chandra Ji of Fatehgarh in order to serve and guide humanity along the path of Reality. This great spiritual genius was born or February 2, 1873. The suspicious Basant Panchmi day. His life marks the advent of a new spiritual era. Through his efforts the well known system of Raj-Yoga, which had hitherto become quite obsolete and neglected for centuries was revived and brought to the light of the day. He was the first man to reintroduce the long forgotten system of yogic transmission which had been the very basis of Raj yoga.

THE MISSION named after this great personality was founded in 1945 by his successor and representative of the same name, Mahatma Ram Chandra Ji of Shahjahanpur, at the earnest request of some of the disciples and associates of the Samarth-Guru, The main purpose was to fulfil the sacred mission of the Master and to serve humanity in an organised way. Since then the Mission, with all its limited resourses has been doing its best to serve spiritually the down trodden masses wading through the mire of ignorance, attachment and vanity. The mission has its headquarters at Shahjahanpur U. P. the residential town of the founder-president. There are over a hundred regular

members including both ladies and gents besides many others who are closely attached to it in full sympathy and devotion to the master. People wishing to join are given seperate sittings for a few days after which they are allowed to participate in the usual gatherings and practise along with the regular members under the guidence of the Master. Spiritual impulse is imparted to them through transmission just on the same lines as to the regular members. When after sufficient asscciation and practice they improve internally and come up to the prescribed limit of progress they are taken in as regular members. Nothing by way of fees or compulsory subscriptions is charged from the members or associates but voluntary donations from them are accepted and that is the only source of the Mission's income. With this poor purse the institution maintains its scanty existence as best as it can serving the people to its utmost capacity. But the fact that wider activities of the Mission are greatly hampered for this reason cannot be denied. The idea of taxing the public purse by making appeals for funds in order to present an external assuming appearence according to the fashion of the time is not approved by the Mission. The mission therefore lacks almost all cutward equipments befitting an important institution of the modern style. Its paraphernalia are practically nil, except a small library of useful books on spirituality or religion, presented mostly by the Ganerous-minded welwishers of the mission. At present it possesses no building of its own, A plot of land has however been allotted to it this year by the local municipal Board on a nominal rent. The question of erecting a building on it is still pending for want of funds. In short there is practically nothing of outward show or grandour (except its noble ideals and useful services) which might attract the attention of the people and induce them to take it as one of the important spiritual institutions. According to the fashion of most of the ancient sagas, who taught and trained their disciples at their humble dwellings or under the shade of trees near about, the training classes of our mission are held at the master's residence or in case of branches and centres at the residence of the preceptors incharge. In certain cases where even this is not possible owing to insufficient accomodation at the house, the party retires to a shady

haunt in some solitary grove or by the river side and holds its gathering or SAT-SANG there. The Mission holds an annual function on the occasion of the birth-day of our Grand Guru on the Basant Panchmi day. Members and associates from all parts come to participate in it. This is probably one of the rare occasions. The whole atmosphere is surcharged with spiritual force, and everything round about seems to emit a strong spiritual waves creating all over a peculiar state of peace and calmness. The function lasts for three days during which all the participients remain merged in the occean of Bliss. The effect taken in by them is lasting and develops thereafter.

OBJECTS–The Mission aims at the spiritual uplift of humanity in general without any distinction of religion, race or nationality, in accordance with the need of the time and the will or Nature, as proclaimed by our Grand Master in his message to the world. The solution of all the various problems of the world lies in the spiritual growth of mankind which can be brought about only through proper spiritual training. Our close adherence to the grossest material form of living is in fact the real root-problem. If it ends, all other problems are solved in a moment. It can end only when we take up the spiritual line. In fact spirituality is our march from the present grossest form of existence to higher and higher planes or to more subtle forms of existence upto the farthest limit of human approach. It may otherwise be termed as a state of Negation, Realization, or One-ness with God. To achieve this eternal and unchanging state of subtle existence and to abide in it permanently is the final object of our Mission which we all sincerely try to achieve and pray for. The following short and simple prayer is offered and meditated upon daily by us all.

> "O, Master ! Ye are the real goal of human life. We are yet but slaves of wishes putting bar to our advancement. Ye are the only God and power to bring me up to that stage."

TRAINING AND PRACTICES–The system followed in our Mission is known as SAHAJ-MARG or the natural path of Realization. It is in fact the well known old system of Raj Yoga, remodelled and improved so as to suit the need of the time and fit in closely with our modern worldly life. The method prescribed under the system is

the simplest. God is simple, so must be the means for achieving Him. The most efficient method can be only that by which one may begin to imbibe as much of the godly attributes as possible. Through this system even the most degraded of the human beings have a fair chance of throwing off their polluted coverings in an instant and advance with amazing speed on the path of Freedom. But one thing, the most essential and indispensible is that the guide selected must be really worthy of the job who may be able to infuse the necessary force or impulse to guide and support him. Practices prescribed under the system are practically none except meditation under the guide once and support of a perfect master. There are no rituals or ceremonials. Members are required to practise meditation both morning and evening at their own homes individually. At intervals, say once or twice a week, they are required to assemble in a group before the Master or one of the preceptors duly authorized by him in order to receive fresh impulse and guidence from him. It is not only on occasions when they are in his presence that they receive impulse from him but in fact the master's watchful eyes remains on them every moment and his power works through, when there is need for it, no matter whereever they might be or whatever they might be doing at the time. His power of Prana (Psychic energy) is always active for the help of all those who crave for it, be they hundreds of miles away from him. Not only this, there are today a number of persons under spiritual training who have not the fortune of seeing him even but are practising as directed, receiving his impulse and developing under his guidence and support. Time and distance are in fact no bar for a Yogi of calibre. He can connect his link with those devoted to him, be they thousands of miles away from him.

Our system of spiritual training starts with the moulding of mind and the cleaning of the CHAKRAS which are the vital centres of concentrated energy or spiritual force. There are six main Chakras, the Mula - Dhar Chakra or the basic-plexus, the Swadhishtan Chakra or the hypogastric plexus, the Manipurak Chakra or the solar plexus, the Anahat Chakra or the cardiac plexus, he Vishudha Chakra or the pharyngeal plexus and the Agya Chakra or the cavernous plexus. Each of these

Chakras is characterised with special Yogic power which is awakened when it is cleaned and illumined. But under the system of Sahaj Marg an aspirant is kept unmindful of these powers, when awakened, in order to safe guard against their abuse. They however begin to work automatically when there is a genuine need for it. The first thing that a teacher of Sahaj Marg system does is to divert the tendencies of mind of the aspirant towards God. By and by Godly thoughts begin to develop in him and occupy his mind for the greater part of the time. In course of time he begins to dwell in a state of constant remembrance of the Lord even though outwardly he may be busy with his usual routine of work all the time. This is the preliminary achievement which gradually leads him on to higher and higher states of resignation and surrender. Universal love, tolerence and moderation become the prominent features of his life and by he begins to dwell in a state of peace and calmness. Similarly all the various spiritual stages are crossed over one by one in quite an easy and simple manner without the least physical or mental strain.

The most striking feature of Sahaj-Marg is 'transmission' by which spiritual lift is imparted by the guide through his own power of Prana. It may be a wonder to the materialistic minds of the world who are better acquainted with baser arts of telepathy and hypnotism which they misunderstand as spiritualism, Spiritualism is in fact far beyond their scope. It pertains puraly to the powers of soul without the slightest tings of matter in it. The sciences of telepathy and hypnotism are based on the powers of thought and will and it is only the material powers of a man that are roused up by them. In spirituality though we, no doubt, start with thought at the preliminary stages but later on after some advancement thought disappears altogether and more subtle power of PRANA or the real spiritual force in a man gets awakened and begins to act without the least implication of thought or will. The effect produced by it on the mind of the aspirant is permanent and he begins to feel lightness of spirit, peace and calmness. His intelligence improves, he begins to acquire Divine insight in a practical way. This process of Yogic transmission was commonly made use of by our ancient sagas, of which there are numerous instances in

our past history. But due to the irony of fate this noble science was forgtoten and lost on account of our moral and spiritual degradation. It remained obsolete for centuries till it was revived by our Grand Master-The Samarth Guru. Only a practical and personal experience can convince a man of the efficacy of the System. In short it is a practical process of 'Give & take' or 'Do and feel' and not merely 'Read and enjoy.' In the there is nothing to teach or preach, no 'do's and don'ts, nothing to believe or disbelives, but there is everything quite plain, simple and practical to be experienced and realized personally.

BRANCHES & TRAINING CENTRES—There are at present only a few branches or centres established at different places in the country and none abroad. A preceptor is incharge of every branch or centre. He helps and guides the members of the place through transmission under the direct instructions and guidence of the Master. No branch can be opened unless a local member who has attained sufficient spiritual elevation repuired for the purpose is available. A few members who have attained the required stage of advancement are working as preceptors at the branches in their own residential towns. In certain cases there are several members possessing the qualifications required for a preceptor at one and the the same place. But as it is not possible for them, for reasons of their employment on profession to shift their residence permanently to another place their services as preceptors cannot be utilised. Thus, so far, we have been able to open branches or centres only at Lakhimpur-Kheri, Puranpur (Pilibhit), Sitapur, Bareilly, Gullverga (South India) and Tinsukia (in Assam). A few more are soon to be opened at Vijayawada, Trichnapoly, Madras and Calcutta where one or the other of the local members is soon expected to come up to the required level of spiritual elevation to enable him to carry on the work of the branch independently.

THE FOUNDER—Mahatma Ram Chandra Ji (of Shahjahanpur U.P.) the founder president of the Mission is a rare personality of the time. He was born on 30th April 1899 at Shahjahanpur. His father Rai Bahadur, Shri Badri Prasad, a lawyer and Special Megistrate was an eminent person of the town and possessed a large estate. From an early age of nine he felt a

kind of inner thirst for Reality, which he could not even understand at the time. As a result he always remained inwardly perplexed and almost drowned in his own thoughts. Finding no other solution during all this period of life, he decided upon to make himself deserving. He also felt an inner craving for a worthy and capable guide and for that he offered prayer constantly. He resolved not to go out in quest of a Guru but he was convinced that if he ever went to anybody with this intention he will definitely take him as his Guru or Master. Fortune favoured him and he finally approached the holy feet of the master, the Samarth Guru Mahatma Ram Chandra Ji (of Fatehgar) on 3rd June 1922. The event was one of utmost importance in his life, and it solved his problem of life. At the very first sight of the great master he felt thoroughly convinced and inwardly settled. He gave up all his former practices and submitted himself in true sense to the guidence and support of the Master. Since then he began to advance with amasing speed, passing through all the various phases of a spiritual life one by one. His life presents a lively picture of true devotion and surrender unparalleled in the history of the time, and he felt almost drowned in it every moment.

On the morning of the 15th August 1931 he suddenly felt a strong current of the unlimited power flowing into his heart and surrounding him all over. His conscience assured him that it was his Master's benevelent gift. It was a strange experience to him and his condition at the time was peculiar. Really that was the time when his Master, who was going to cast off his material form, had transferred all his powers to him as his representative. Soonafter on that very night (the 14th August 1931) the great sage went into Maha-Samadhi or the state of everlasting peace. The next evening when the shocking news was conveyed to him, the very words struck him a severe unbearable blow near the stomach and strange to say that the effect there of persists even to this day in the form of constant pain which has not been cured in spite of all treatments. Soonafter he got an attack of diarrhoea which subsequently developed into cholera of the deadly type. When he recovered from this prolonged illness he felt a new spiritual life in him, but for reasons best known to the grand-master himself, the unlimited power transferred to

him was not exposed at the time but was kept in a dorment state. In 1944 after a lapse of about twelve years his true state was exposed and the unlimited power stored in him began to display itself. Since then he is at work for the cause of humanity. It is really impossible to form a definite estimate of his attainments and approach. All that I can say of him, on the basis of my personal knowledge and experience is that his true state is beyond common conception. The nature is an open book to him ; Divine mysteries are revealed to his mind ; he is in constant communion with the Supreme Master in all respects. Divine orders, communicated through vibrations are translated in his heart and he works in accordance with them for the cause of humanity (little known to the world though it may be.) He has no will of his own except that of the Lord. He has no mind of his own but that of the Lord. His very existance is that of the Lord. He is identical with Him in true sense. He abides permanently in a state of complete oneness.

I do not mean to influence anyone with my views and convictions or persuade him to believe and follow blindly. But I do really mean to induce my dear brothers and sisters all over the world to judge and experience for themselves and to do the needful to solve their own individual problems and with it that of the world in general. The best way is to contact him personally but if it is not practicable under the circumstances then through correspondence, and try to read and understand him internally, seek inspiration from him and try to juudge whether you improve spiritually or not. Time and distance are no barrears for such Yogis of calibre. One can feel the effect of his impulse where-ever he might be, only if he links his neart with him in true love and devotion.

LITERAURE—The mission has so far been able to publish only a few books. Much of its literature is still in the manuscript form which could not be got printed as yet on account of its limited resources. The following is the list of books published by the mission.

(1) Commentary on ten commandments of Sahaj-Marg in Urdu. The book deals with dynamical relation between God and man as aepicted in the ten commandmonts of Sahaj-Marg. The Hindi translatlon in almost ready for the press but the public ationis delayed for insufficient funds.

(2) Efficacy of Raj Yoga in English :— It is more or less a spiritual autobio graphy of the author and deals with the various stages of spiritual advancement upto the highest limit of human approach.

(3) Reality at Dawn, in English :—It deals with the various problems of a spiritual life and offers simple and easy means of attaining the goal.

(4) Guru Sandesh, in Hindi :—It is a lecture delivered by the the President at one of the Mission's functions at Lakhimpur Kheri in 1952. It conveys the grand-master's message to the World.

(5) Sahaj Samadhi, in Hindi, by one of our sisters Kumari Kasturi Chaturvedi who by the Master's grace and guidence has secured a high spiritual approch in a very short time, In this booklet the authoress depicts her own experiences of Sahaj Samadhi, or the permanent state of the finest type of concentration.

RAMDASS CHATURVEDI

Shri Ramchandra Mission

Shahjahanpur, U. P., India.

THE SAVIOUR

The coming of the Saviour

The coming of the Savior or Avatar (Incarnation) in the world in human form is not a mere matter of accident, The Supreme Divine Will send Him down on earth for the accomplishment of the Nature's task. In other words He comes down when Nature demands his presence on earth in order to destroy the forces of evil which have created a state of chaos hampering the normal working of the Nature's machinery. Almost every religion believes in and proclaims the advent of such Godly energy in human form in the world at some stage. The Christians belive in the establishment of Millennium or the thousand years of peace under the rule of the World Saviour. The Mohammedans belive in the reconstruction of the world towards the close of the fourteenth century of the Hijri era with the advent of Imam Mehdi. The Hindu scriptures also proclaim similar views. Lord Krishna, the great Incarnation, in existence in human form about five thousand years ago, has expressed similar views which are recorded in the holy Gita. Speaking in the capacity of the Incarnation, he says :–

"Though Unborn and Immortal and also the Lord of all beings I manifest myself through my own Yogmaya (Divine Potency) keeping my nature (prakirti). Under control"

This shows that God though formless' does at times exist on the earth in human form, and Lord Krishna being himself the Incarnation of God, proclaims this to the world in the capacity of the Lord of all beings. This corresponds with the views held by other religions too. Thus the fact relating to the appearence of the Avatar or Saviour stands almost undisputed. Most of the great saint of today, agreeing with the above views, are

looking forward with eager expectations for the advent of the Saviour or Incarnation.

The time of his advent

The time of his advent, therefore, must naturally be that when the poisonous effect of absolute materialism has created so much disorder and chaos all over the world that it is almost beyond human control to clear it. Lord Krishna says in the Gita :—

> "O, Arjuna, when there is decline of righteousness and unrighteousness is in ascendency, then I come down assuming the human form."

Let us now judge and decide whether the present condition of the world really demands the presence of the Avatar or Saviour on earth or not. The entire world civilisation, as we see it today, is based on absolute materialism which has acquired such a high predominence in the minds of the people that the very existence of God appears to most of us as superfluous. Social, moral and religious degradation has nearly reached its final limit. Religion has in most cases become only a profession. Ungodliness in the garb of religion is prevailing everywhere. Hypocracy, selfishness and vanity are predominent. Gloomy atmosphere of sin and degradation is spreading all over. Under such conditions the advent of the Incarnation is but essencial and inevitable. I would most humbly put before you my master's views in this respect. In his book 'Reality at Dawn' he says, "But now the age of materialism must come to an end. The old order must change yielding place to new. The present structure of the world civilisation, based on electricity and atomic energy shall not remain in existence for long. It is destined to fall soon. The whole atmosphere is so much charged with the poisonous effect of absolute materialism that it is almost beyond human control to-clear it. Time has almost matured for the CHANGE, which is imminent and inevitable, and for which the GODLY ENERGY in human form is already at work as referred to in my book 'Efficacy of Rajyoga.' It may not at present be convincing to some of us, but it is a fact beyond doubt. The world shall know of Him and His work in this respect after some time when events have sufficiently come to light." I also quote herein the passage from the 'Efficacy of Rajyoga' which he has referred to above "Nature now requires

CHANGE, a thorough overhauling, and for this purpose, I may assure you, a special personality has already come into existence and has been at work for about two and a half years." (Now about ten years till date.) Thus on the authority of my master's words and my own practical experience in this respect, I may assure the world in all earnestness that the GODLY SOUL in human form (The Avatar or the Saviour) is in existence in the world today, busy with his programe of work, the CHANGE.

Indications of His presence

The Avatar's advent is not to be proclaimed to the world by the beat of drum, nor by any supernatural phenomenon in the sky, nor by any other miraculaus means to satisfy and convince the materialistic minds of the people in general. But though he generally remains unknown to them, still godly personalities are never unawate of His existence and to them even the slightest hint in nature is enough to reveal the fact. The most common indication of the Incarnation's advent, as given by the great saint Shree Ram Krishna Paramhansa, is, "When a huge tidal wave comes, all the brooks and ditches become full to the brim without any effort or consciousness on their own part, so when an Incarnation comes, a tidal wave of spirituality breaks upon the world and people feel spiritually almost full in the air." Let us now see and judge with a clear conscience whether such a condition prevails in the world today or not. If it does, it undoubtedly proclaims the presence of the Incarnation amongst us. As a test of his presence, I may also add, let every one who may, meditate for sometime sincerely thinking that he is receiving spiritual impulse from the Great Incarnation in existence today, and feel and judge whether he does receive it or not. If he does, it is a sufficient proof of his existence. An other surest method to discover His is to meditate for it with all earnestness for some time continuously. By these simplest means every one can feel and realise his presence and can even secure personal contact with Him if he desires so earnestly. For saints of high calibre it is always open to them to read the signs in nature or to intercommune with Him direct through clairvoyance. I would most earnestly entreat my brothers all over the world not to take my words lightly, but to give up all

delusion and try sincerely the means suggested above and avail of the Divine Grace so fortunately fallen to our lot this day. I may assure you by all means in my power that the present time is one of the rarest occassions when with the slightest effort on our part we can secure the highest approach in the shortest possible time by the gracious benovolence of the great Incarnation. Do not believe blindly what I say herein, but do try to experience and realise for yourself and be convinced if it stands your test.

His exterior form

From the different views expressed by godly persons in the World Religion Congresses held under the auspices of the Ananai-Kyo. I am glad to note that the question of the advent of the Saviour is the uppermost in every mind. There are of course a few who seem to be convinced of the fact that the Saviour has already come into existence in human form Others though they do not seem to realise this fact, are quite confident that the time of His advent has come and that He is to appear soon. The reason of this petty difference probably seems to be that everyone has his own conception of the Saviour. We generally expect him to appear to us in an imposing form full of external grandeur, exhibiting supernatural powers at every step to command submission at sight. He is as commonly believed, to rule over earth, so we naturally conclude Him to be a great king or a religious head, in His outward form. But what we think or believe, may not be literally true. It is in fact for us to judge and realise the divine grandeur in His real Being and not in His outward form. His external form may be so simple and unassuming that His very simplicity may serve as a veil to his true state. He shall not be belonging to any nation race or religion, though apparently he may have taken birth within the fold of one or the other. His existence is universal. Imagine for a while an ordinary man going about the roadside in the simplest form, having nothing about him to attract the eye of a passerby. Will anyone be prepared to accept him as the Saviour ? I believe certainly not. But just as a jeweller's eye can not fail to recognise a jewel lying in a heap of rubbish, so will the eye of a saint of calibre with divine insight, never fail to judge Him as such, however simple and unassuming

he may apparently be. His entire outward life is just like that of an ordinary man, facing all the ups and downs of a normal worldly life ; for being in the human form He has necessarily to play the part of a man in true sense. Therefore those who think of judging him merely by his external form, his extensive knowledge or his miraculous actions, are sure to meet failure. Therefore inorder to have a true knowledge of the Saviour, we must set aside our particular notions and beliefs in this respect and sincerely try to discover him by means suited to the purpose or rely upon the experiences and judgement of great saints with divine insight, who can read the signs in nature or commune with higher Souls.

The personality in exis-tence as

The Avatar or Saviour, possesses all the godly attributes. He is Omnipresent, Omniscient and Omnipotent. He can appear in the sun, the moon and the stars in the astral form at one and the same time, inspite of having his physical body at one place only. He is kind, benevolent, just and merciful and gives everyone his dues without reserve. He lavishly bestows His blessings on the righteous but punishes and destroys the vicious and the ungodly. His power is unlimited. He commands all the forces of nature and can at any time set them to action for the accomplishment of the task before Him. All His activities are Divine and may at times appear to be most wonderful and miraculous. But that may only be when there is genuine need for it. His Will in all matters pertaining to godly work is unfailing. He can in a moment charge any place, country or even the whole world with the highest spiritual force and bring all men in a state of trance. He can at a glance bestow upon anyone the highest spiritual approach if He is so pleased. He can at a single stoke of His will remove or destroy the effect of all the past SANSKARS (results of actions) of a man, and free him from all bondages. When fortunately you happen to find One, possessing of these supernatural powers, know Him not to be an ordinary human being but the very INCARNATION ? who has come down for the salvation of the world. MAY WE ALL KNOW HIM IN TIME. Amen.

His working

The Avatar or the Saviour comes on the earth for the specific purpose, with a definite programme of work as stated in the Gita (quoted below)

"For the protection of the virtuous, for the destruction of the evil doers and for the establishment of Dharma (righteous-ness) on a firm footing, I take birth from age to age."

Thus the main item of His work is to eliminate unrighteous-ness from the surface of the earth and to establish righteous-ness on a firm footing. It is wrong to think that with the appearance of the Saviour on earth all men will instantly turn holy and virtuous, that all things will at once be set right in the world and that one and all creatures on earth will be saved. The Saviour, as rightly He is called, shall in fact be the Saviour of the righteous only. He shall at the same time be the killer and the destroyer of the wicked and the ungodly. He shall not come down only to rule in a world, composed of all blissful elements and surrounded by all favourable circumstances He shall come to CHANGE the very face of the earth. The world shall not be to Him a bed of roses, but He shall have to struggle, to contrive, and to endeavour, bringing all means into action to remove evil and the evil-doers from the world. He shall meet opposition from almost every quarter. He shall be hooted at and reviled by the ungodly persons who form the bulk of the world population today. Followers and supporters He may possibly have only a few, but inspite of all these apparently adverse circumstances, he shall go on efficiently and successfully with His programme of work of destruction and construction. 'To mend or to end' shall be the only two alternatives with Him, He shall be quite unsparing in His work. All evil-doers who do not mend in time on account of the effects of their past Sanskars (results of actions) shall have to face destruction. The wholesale destruction of the undesirable element from the surface of the earth is generally brought about at different places by different means. It may be through storms and floods, through famines and diseases, through wars and massacres or through heavenly calamities like volcanic upheaval etc. My divine Master expresses his views in this respect in the following lines :—

"There shall be enormous bloodshed all over the world and the loss of life through various cause shall be so great that the world population shall be considerably reduced. The new stucture of the coming world will

stand on bones and ashes. A type of civilisation based on spirituality will spring forth in India and it shall become in due course the world civilisation. No country or nation shall survive without spirituality as its base and every nation must sooner or later adopt the same course if it wants to maintain its very existence."

It shall be wrong to treat this as a mere prophesy. It is the revealation of the mysterious facts included in the future programme of the great Divine Incarnation. Believe it or not, but signs are evidently clear that the world is rushing towards it with a headlong speed. Time it may, however, take but that too shall not be very long. Some of the events are coming to light even today. Most of the items in His programme of CHANGE are bound to come into effect by the close of the present century (of the Christian era). Let us therefore wake up in time and mend, inorder to secure for ourselves a safe place in the new set up of the coming world based on the principles of Righteous-ness. I now close with the prayer :—

May the good gracious God bestow upon us Light and guidence to lead us to the true knowledge of the Great Incarnation, the World Saviour, and inspire us with devotional surrender to His Will. Amen.

Yours
in the service of the Lord
[ISHWAR SAHAI]

श्री रामचन्द्र मिशन में सदाचार-सम्बन्धी नियम

१. अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए, जैसे जल-पक्षी (मुर्गाबी)। जब वह पानी के अन्दर से निकलती है, तो उसके पंख सूखे ही रहते हैं।

२ सत्संगी भाइयों से प्रेम। दैनिक बोल-चाल में मधुर तथा मीठी वाणी (शीरीं-दहनी) होनी चाहिए।

३. मित्र और शत्रु को एक सा जानो अर्थात् दोनों को भलाई चाहो।

४. पतिव्रता स्त्री की भाँति केवल 'मालिक' के स्मरण को हृदय में स्थान दें और दूसरे का विचार आने से रोकें।

५ व्यर्थ बातें न की जावें। व्यर्थ वार्त्तालाप का परित्याग करें। उपन्यासों का पढ़ना बन्द कर दें। हृदय को अन्य के प्रेम में सराबोर न होने दें। मित्रता की वृथा धुन को छोड़ दें। केवल ईश्वर को अपना मित्र समझें। धार्मिक पुस्तकें, जिनमें ईश्वरीय प्रेम छलकता हो, पढ़ सकते हैं। गूढ़ फिलासफी उस समय तक पढ़ने की आवश्यकता नहीं, जब तक आज्ञा न प्राप्त कर लें। यदि योग्यता हो तो सीधे ईश्वर (Direct), वरना मुझसे।

६. आपस का व्यवहार भाई-चारे का रखें। एक दूसरे की तकलीफ में सहायक हों।

७. श्रेष्ठ सदाचार इस मार्ग का जीवन है। वाह्य क्रियायें, जैसे संध्योपासना करना तथा घरके कामों को उचित रूप से करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

८. बच्चों के पालन-पोषण में संलग्न रहें, इस तरह पर कि दिल में दाग न आने पावे। अर्थात् उनका प्रेम न हो कि कष्ट-दायक हो।

९. स्त्री को अपना सहायक बना लें और समझ लें कि गृहस्थी की गाड़ी का एक पहिया हम हैं और एक वह।

१० अपने महल्ले वालों से इस तरह का व्यवहार रखें कि वे अपने ही मालूम हों और वे भी उसको अपना ही समझने लगें। यही सदाचार सबके साथ बर्तना चाहिये।

११. सम्बन्धियों (रिश्तेदारों) से इस तरह का सम्बन्ध रक्खे कि उसकी रस्सी कटी हुई प्रतीत हो। हर दशा में उनके दुःख-दर्द में साथ दें और यह बात सब के साथ होना चाहिए। रुपये-पैसे के लेन-देन से बचे रहें। यदि उनकी आवश्यकता पड़ जाय तो उतने रुपयों से उनकी सहायता करें कि वापस न होने पर पछतावा न हो और सम्बन्ध में कमी न पड़े।

१२ अपने अफसरों से ऐसा व्यवहार रखें कि उसको यह न प्रतीत हो कि यह मनुष्य अपने कर्तव्य के नियम से गिरा हुआ है, और उस सेवा के बदले में जो कुछ मिल जावे, उसको ईश्वर की ओर से समझें।

१३. अपनी राय ऐसे स्थान पर न दें कि जहाँ यह समझ में आवे कि उसका कोई मूल्य न होगा। रोगी को औषधि (वैद्य या डाक्टरों के अतिरिक्त) बताना, ऐसी हालत में, जब कि उसका Serious case हो, नहीं चाहिए, जब तक विश्वास न हो जाय कि यह हाथ से जा रहा है।

१४ किसी को भी अपने भेद की जानकारी न होने दे और न उसको यही प्रतीत हो कि यह भेद मुझसे छिपाया जा रहा है। साधारण जीवन उदासीनता (बेलौसी) के साथ व्यतीत करें। जहाँ तक हो सके, चिन्ता को निकट न आने दें और यदि आ भी जाय तो उसको ईश्वर की ओर से समझें और उसको धन्यवाद दें। यह अभ्यास और भी घरेलू बातों में किया जा सकता है।

१५ खाने-पीने के बारे में एक-रस बन जावे। शुद्ध कमाई का ध्यान रखें।

१६. अपने गुरु को सब कुछ दे बैठे (इससे मेरा मतलब रुपये-पैसे इत्यादि से नहीं है) और उसको अपना समझ ले। और व्यवहार के विषय में जो मानवता के नियम कहे, उसका पालन करे।

१७. सत्संगी भाइयों के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए, जो प्रफुल्लता का हो और उनको उन्नति दे।

—श्री रामचन्द्रजी महाराज, प्रेसिडेण्ट (प्रधानाचार्य),
श्री रामचन्द्र मिशन,
शाहजहाँपुर (यू० पी०)

मुद्रक—जगत्तारिणी प्रिण्टिंग वर्क्स, ३७४।१, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-६